वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५५ अंक ९ सितम्बर २०१७

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

सितम्बर २०१७

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५५
अंक ९

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804

कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

सितम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

५	शिक्षक-दिवस
१४	स्वामी अभेदानन्द
२०	स्वामी अखण्डानन्द
२८	दुर्गा-महाष्टमी
३०	विजयादशमी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

शिकागो धर्ममहासभा में स्वामी विवेकानन्द की उपस्थिति का यह भित्ति-शिल्प नागपुर स्थित अंबाझरी तालाब का है ।

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
२९७. श्री कैलाशचन्द्र एच.शाह (अग्रवाल), गोधरा (गुज.)	शा. महाविद्यालय, बिरसिंहपुर पाली, उमरिया (म.प्र.)
२९८. ,, ,,	हेमचन्द्राचार्य नॉर्थ गुजरात यूनिवर्सिटी, पाटन, जि.- मेहसाना
२९९. ,, ,,	लाल बहादुर शास्त्री शास. डिग्री कॉलेज (सवरा), शिमला
३००. ,, ,,	नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद, जिला - फिरोजाबाद (उ.प्र.)
३०१. ,, ,,	आर्ट्स, कॉमर्स एंड साईंस कॉलेज, किरन नगर, अमरावती
३०२. ,, ,,	आशुतोष कॉलेज, कालीघाट, कोलकाता (पं.बंगाल)
३०३. ,, ,,	सी. एम. साईंस कॉलेज, दरभंगा (बिहार)
३०४. ,, ,,	बसुगाँव कॉलेज, बसुगाँव, जिला - चिरांग (असम)
३०५. ,, ,,	घनप्रिया वुमेन्स कॉलेज, जेल रोड, इम्फाल (मणिपुर)
३०६. ,, ,,	बिड़ला गवर्नमेंट कॉलेज, भवानी मंडी, झालावाड़ (राज.)
३०७. श्री आर. पी. सराफ, भिलाई (छ.ग.)	अनुविभागीय अधिकारी, लो.नि.वि. सेतु उपसंभाग दुर्ग (छ.ग.)
३०८. श्री जयप्रकाश पुष्पलता वर्मा, चंगोराभाठा, रायपुर	शास. महाविद्यालय, मु.पो. मोहला,जि.- राजनांदगाँव (छ.ग.)
३०९. श्री लक्ष्मीनारायण दास, सुंदर नगर, रायपुर (छ.ग.)	शा. डॉ. वी. वी. पाटणकर पी.जी. गर्ल्स कॉलेज, दुर्ग (छ.ग.)
३१०. श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़ (पंजाब)	बेबे नानकी यूनिवर्सिटी कॉलेज, मिथरा, जि.कपूरथला (पंजाब)
३११. ,, ,,	एल.बी.एस. आर्य महिला कॉलेज, बरनाला (पंजाब)
३१२. श्रीमती शिप्रा चक्रबोर्ती, राउरकेला (उड़ीसा)	श्री भागवत महाविद्यालय, अस्सी, वाराणसी (उ.प्र.)
३१३. श्री एस.पी. मित्तल, सेक्ट.११,पंचकुला (हरयाणा)	मा. दयानन्द रामकृष्ण सेवा समिति,दुब्बल धन, जि.-झज्जर
३१४. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर	एल्फिन्सटन कॉलेज, एम. जी. रोड, फोर्ट, मुम्बई (महा.)

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के १६वें संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज

पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के १६वें संघाध्यक्ष हुए। उनका चयन मठ-मिशन की संचालन समिति के न्यासियों की १७ जुलाई, २०१७ की सभा में किया गया। उनका जन्म १९२९ में तमिलनाडु के तंजौर जिले के अंडामी नामक ग्राम में हुआ। १९४६ में उन्होंने चेन्नई से सेकेन्ड्री स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके पिताजी नासिक में कार्यरत थे, इसलिये उन्होंने वहाँ जाकर कॉमर्स में डिप्लोमा किया। १९४९ में वे मुम्बई चले गये और वहाँ उन्होंने नौकरी और अध्ययन साथ-साथ किया।

वे बड़े अध्ययनशील थे और महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित थे। उन्होंने गाँधीजी द्वारा निर्देशित 'श्रीराम' जप की साधना आरम्भ की और यहीं से उनके भावी जीवन की दिशा मुड़ गयी। कभी-कभी वे मुम्बई के वर्ली समुद्र-तट पर जाकर विशाल चट्टान पर मौन बैठकर सूर्यास्त देखते रहते। एक दिन जब वे वहाँ बैठे थे, तभी उनके मन में विचार आया – "अच्छा, ये चट्टानें इतनी बड़ी हैं, समुद्र इतना विशाल है, आकाश अनन्त है, तब मैं क्या हूँ – पृथ्वी का छोटा कण हूँ? फिर भी इसे इतना महत्त्व क्यों देते हैं? उत्तर मिला – यह सत्य है कि तुम धरा पर छोटे दिखते हो, किन्तु तुममें महान चैतन्य-सत्ता विद्यमान है, जो इस जगत से बड़ी है। यह विचार इतना प्रबल था कि मानो कोई उनके कानों में सुना रहा हो।

एक दिन एक मित्र से उन्हें मुम्बई स्थित रामकृष्ण मिशन की जानकारी मिली। वे विस्मित हो गये, क्या मुम्बई में ऐसा स्थान है ! उन्होंने मित्र से पूछा, 'क्या तुम मुझे वहाँ ले चलोगे?' 'हाँ, ले चलूँगा, किन्तु किसी से कहना मत', मित्र ने उत्तर दिया। वे प्रत्येक सप्ताह मुम्बई आश्रम जाने लगे। वे रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य, विशेषकर श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, ज्ञानयोग, शक्तिदायी विचार का अध्ययन करने लगे। इससे उन्हें अन्तर्दृष्टि और प्रेरणा मिली। वे गवेषणा करने लगे, "जीवन का क्या अर्थ है? मेरे जीवन का क्या आदर्श होना चाहिये?" एक दिन बस में यात्रा करते समय उनके हृदय से स्वत: वाणी प्रस्फुटित हुई – "तुम्हें संन्यासी बनना होगा।"

तब मुम्बई के स्वामी अपर्णानन्द जी से उनकी घनिष्ठता हो गयी थी। १९५२ में श्रीरामकृष्ण के पावन जन्मदिवस पर २२ वर्ष की आयु में वे मुम्बई आश्रम में ब्रह्मचारी के रूप में सम्मिलित हुए। उसी वर्ष रामकृष्ण संघ के ७वें संघाध्यक्ष स्वामी शंकरानन्द जी महाराज ने मुम्बई आश्रम में उन्हें मन्त्र-दीक्षा प्रदान की। स्वामी शंकरानन्दजी से ही उन्हें १९५६ में ब्रह्मचर्य और १९६० में संन्यास दीक्षा प्राप्त हुई। स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने मुम्बई आश्रम के विभिन्न विभागों में सेवा-कार्य किया। उन्होंने औरंगाबाद में सूखा-राहत कार्य भी अन्य साधुओं के साथ बड़ी निष्ठा और लगन से किया।

१९५८ में वे कोलकाता, अद्वैत आश्रम में स्थानान्तरित हुये। १९६१ में वे प्रबुद्ध भारत के सम्पादन में सहयोग हेतु मायावती आश्रम गये। मायावती में उन्होंने गौशाला, कृषि और अन्य सेवा-कार्य किये। वे विभिन्न सेवाकार्यों हेतु अनेक बार मायावती आश्रम गये। अद्वैत आश्रम में उन्होंने मुख्यत: प्रकाशन विभाग में कार्य किया और उसका प्रशंसनीय विकास किया।

१९७६ में वे शैक्षिक संस्थान सारदापीठ, बेलूड़ मठ के सचिव हुए। उन्होंने वहाँ १५ वर्षों तक शिक्षा, ग्रामीण विकास, राहत कार्य आदि अनेक विभागों का विकास किया। १९७८ में महाराज ने पश्चिम बंगाल में बाढ़-राहत कार्य किया। १९९१ में वे रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष हुए। उन्हीं के कार्यकाल में चेन्नई मठ के भव्य मंदिर का उद्‌घाटन हुआ। १९८३ में वे रामकृष्ण मठ के न्यासी के रूप निर्णीत हुए। १९९५ में वे रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव बने। १९९७ में वे रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव चयनित हुए और १० वर्षों तक उन्होंने यह सेवाभार वहन किया। २००७ में महाराजजी सह-संघाध्यक्ष हुए और उन्होंने देश-विदेश में यात्रायें कर ठाकुर, माँ, स्वामीजी की वाणी का प्रचार-प्रसार किया और अनेक भक्तों को दीक्षा भी प्रदान की। उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख लिखे।

पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज १० वर्षों तक सह-संघाध्यक्ष के रूप में सेवा करने के बाद सम्प्रति रामकृष्ण मठ-मिशन के संघाध्यक्ष के रूप में विराजमान हैं।

या देवी सर्वभूतेषु

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

– हे देवि ! तुम विष्णु-माया हो, सभी प्राणियों में चेतना हो, तुम बुद्धिरूप में, निद्रारूप में, क्षुधारूप में, छायारूप में, शक्तिरूप में, श्रद्धा और शान्ति के रूप में विराजमान हो । तुम्हें बार-बार नमस्कार है ।

पुरखों की थाती

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम् ।।५६४।।

– जहाँ तक हो सके, इस संसार में संग का बिल्कुल परित्याग कर दो । यदि ऐसा न कर सको, तो फिर सज्जनों का संग करो, क्योंकि वे ही संसार-रोग की उत्तम औषधि है ।

सद्भावेन हरेन्मित्रं सम्भ्रमेण तु बान्धवान् ।।
स्त्री-भृत्यौ दान-मानाभ्यां दाक्षिण्येनेतराञ्जनान् ।।५६५।।

– सद्भाव से मित्रों को, सम्मान से बन्धुओं को, दान-मान से स्त्री तथा सेवकों को और उदारता से अन्य को वश में लाना चाहिए ।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः स्वाध्याये जपदानयोः।।५६६।।

– अपनी पत्नी, भोजन तथा धन – इन तीन चीजों में सदा सन्तोष रखना चाहिये; और स्वाध्याय, जप तथा दान – इन तीन चीजों में सर्वदा असन्तुष्ट रहना चाहिये ।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।।५६७।।

– संसार के सभी प्रकार के दानों में विद्यादान ही सर्वश्रेष्ठ है । (मनुस्मृति, ४/२३३)

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।।५६८।।

– इस संसार में मनुष्य के ये छह दोष हैं – निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और काम को टालना; जिसे ऐश्वर्य की इच्छा हो, उसे इनका त्याग कर देना चाहिए ।

विविध भजन

जय दुर्गा करुणामयी

आनन्द तिवारी पौराणिक

सन्तानवत्सला स्नेह-निर्झरा, जय माता ममतामयी ।
कण-कण नित कृपा बरसाती, जय दुर्गा करुणामयी ।।
अनन्त कोटि ब्रह्माण्डस्वामिनी, तेजपुंज प्रकाशिनी ।
चक्र त्रिशूल खड्ग धारिणी शुम्भ-निशुम्भ संहारिणी ।।
देव-अरि महिषासुर मर्दिनी, रौद्र रूप तुम धारिणी ।
चण्ड-मुण्ड विनाशिनी माँ, धर्म, नीति सत् रक्षिणी ।।
शाप-ताप भवजाल नाशिनी जग-उद्धारिणी क्षमामयी ।
कण-कण नित्य कृपा बरसाती, जय दुर्गा करुणामयी ।।
ज्यों खग-शावक, मात पक्षिणी बिन नीड़ में आकुल ।
गोशाला में नन्हा बछड़ा बिन गो माँ के व्याकुल ।।
मातु हृदय लगने को ज्यों शिशु हो प्रतिक्षण आतुर ।
जन्म जन्म मेरो प्राण विलपत सुन प्रार्थना कातर ।।
चरण धूलि मेरो शीश धरो माँ दो कृपाशीष महिमामयी ।
कण-कण नित कृपा बरसाती जय दुर्गा करुणामयी ।।

धाय धरो हरि चरण सबेरे

मंजुकेशी

धाय धरो हरि चरण सबेरे ।।
को जानै कै बार फिरे हम चौरासी के फेरे ।
जन्मत-मरत दुसह दुख सहियत करियत पाप घनेरे ।।
भूलि आपनो भूप रूप भये काम कोह के चेरे ।
'केशी' नेक लही नहिं थिरता काल कर्म के पेरे ।।

पूजन गौरी चली

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

सखियन संग जनक दुलारी, पूजन गौरी चली ।
जहाँ फूल रही फुलवारी, पूजन गौरी चली ।।
कोऊ सखी गावत गीत मनोहर,
संग देत कोउ तारी । पूजन गौरी चली ।।
दल फल-फूल लिये सखि कोऊ
कोउ लिये कर-कंचन थारी । पूजन गौरी चली ।।
करि पूजा अनुराग सहित वर
जाचेउ निज अनुहारी । पूजन गौरी चली ।।
एक सखि तजि संग सखिन्ह को
लखिबे वर वाग सिधारी । पूजन गौरी चली ।।
राम लखन दोऊ बन्धु विलोकत
बिग गई बिनु मोल विचारी । पूजन गौरी चली ।।
तासों सुनि संवाद मनहि मन
हरिषीं मिथिलेश कुमारी । पूजन गौरी चली ।।
सखि आगे कर चली तहाँ जहाँ
बिहरैं प्रभु अवध बिहारी । पूजन गौरी चली ।।
भई विह्वल जब लतन्ह ओट में
छवि श्यामल मधुर निहारी । पूजन गौरी चली ।।
माँगत भीख जुगल दर्शन की,
जन राजेश भिखारी ।। पूजन गौरी चली ।।

रे मन ! तू हरि के गुण गावै

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

रे मन ! तू हरि के गुण गावै ।
हरि ही नित्य परम अविनाशी तू हरि को ही ध्यावै ।।
जो पावै सो जानै हरि को, जो जानै सो पावै ।
हरि-पद-कलप-विटप तजि मूरख क्यों बबूर फल खावै ।।
हरि-शरणागति छोड़ि खान सम तू इत-उत क्यों ध्यावै ।
कूकर-शूकर सम क्यों भटकै, कुमति-कुगति अपनावै ।।
माया जटिनी मोह-पाश ते पुनि-पुनि तोहि नचावै ।
भानुदत्त हरि बिन कलि-केहरि ते कोऊ न बचावै ।।

शिक्षा-ग्रहण हेतु छात्र-छात्राओं का कर्तव्य

इस मास में जगजननी महिषासुरमर्दिनी माँ दुर्गा की पूजा है। माँ दुर्गा हमारी बाह्याभ्यन्तरिक दोनों विक्षेपों का शमन करती हैं और हमें अपनी ब्रह्ममयी सत्ता की रसानुभूति कराने की कृपा करती हैं। वे भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी हैं। माँ दुर्गा स्मृतिरूपिणी हैं, स्मृतिप्रदायिनी और स्मृतिरक्षिणी भी हैं। विद्यार्थियों को विद्याग्रहण और विद्यारक्षणार्थ विमल बुद्धि की, स्मृति की आवश्यकता होती है, जिसे माँ दुर्गा प्रदान करती हैं। दुर्गासप्तशती में कहा गया है –

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसी।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते।।
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्।।

इस प्रकार माँ दुर्गा विद्याप्रदायिनी हैं। नवरात्र में माँ दुर्गा की आराधना सभी अपने-अपने स्तर से करते हैं, शिक्षा-ग्रहण के साथ-साथ नवरात्र में दुर्गा माँ की अर्चना-पूजा छात्र-छात्राओं के लिये भी श्रेष्ठ है।

वह ऐतिहासिक क्षण !

दूसरी बात है कि ११ सितम्बर का दिवस विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है, जो अपनी प्रभा से विश्व के सभी धर्मों और पन्थों में समन्वय, सामंजस्य, एकता और प्रेम स्थापित करने के लिये प्रखर ज्ञान-सूर्यमय जगत की ओर अग्रसर होने को प्रेरित करता है। भारत और विश्व के सभी बौद्धिक, चिन्तक और धर्मानुयायी इस महान दिवस से परिचित हैं। इसी दिन स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में शिकागो के कोलम्बस हाल में विश्वधर्म सम्मेलन में अपना ऐतिहासिक व्याख्यान दिया था, जिसने उस सभागार में उपस्थित सभी लोगों को मन्त्रमुग्ध कर दिया और श्रोताओं की कई मिनटों तक करतल ध्वनि गूँजती रही। वह व्याख्यान कालान्तर में सभी धर्मों और विश्ववासियों में परस्पर सौहार्द की प्रेरणा का स्रोत बना। स्वामीजी के विचारों की महत्ता को समझते हुए उस व्याख्यानमाला की शताब्दी देश-विदेश में मनाई गयी और उस व्याख्यान को जन-मानस तक पहुँचाने के लिये उसकी लाखों प्रतियाँ मुद्रित कराकर नि:शुल्क वितरित की गईं। छात्र-छात्राओं, शिक्षकों को स्वामीजी के शिकागो-व्याख्यान को अवश्य पढ़ना चाहिये।

शिक्षकों का आत्ममन्थन दिवस : शिक्षक दिवस

तीसरी बात है – ५ सितम्बर को भारत के महान शिक्षाविद्, दार्शनिक और राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्जी का जन्मदिवस । इनकी जन्म-जयन्ती को सम्पूर्ण भारत में सोल्लास 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाता है। शिक्षक तो बहुत से हुए, किन्तु राधाकृष्णन्जी के जन्मदिवस को 'शिक्षक दिवस' के रूप में क्यों मनाया जाता है, इस पर गहन अध्ययन-चिन्तन-मनन करना चाहिये और शिक्षकों को उनके गुणों को आत्मसात् करना चाहिये।

शिक्षा : जीवन का अभिन्न अंग

शिक्षा भारतीय जीवन का महत्त्वपूर्ण अपरिहार्य अंग है। शिक्षक दिवस पर शिक्षा के लिए समर्पित आदर्श शिक्षक डॉ. राधाकृष्णन्जी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर विचार-विमर्श, संगोष्ठी आदि शिक्षकों, छात्रों और जन-मानस के लिये एक प्रेरणा का स्रोत बनती है। डॉ. राधाकृष्णन्जी एक शिक्षक से राष्ट्रपति बने, यह जीवन-शैली शिक्षकों में महती सम्भावना का उद्रेक करती है। एक सामान्य शिक्षक राष्ट्रपति बन सकता है, एक महान दार्शनिक बन सकता है, एक शिक्षाविद् बन सकता है। उनका प्रेरक व्यक्तित्व है, जिसे प्रत्येक भारतवासी को, कम-से-कम हमारे शिक्षाक्षेत्र से सम्बन्धित सभी छात्र-छात्राओं और शिक्षकों को जानना चाहिये।

स्वामीजी ने भारत-भ्रमण कर देश की दुर्दशा देखी थी। उन्होंने अमेरिकी नर-नारियों की शिक्षा और समृद्धि को देखकर यह निष्कर्ष निकाला था कि भारतवासियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने, आत्मविश्वासहीनता, गरीबी और भ्रम को मिटाने हेतु सर्वप्रथम उन्हें शिक्षित करने की आवश्यकता है। इसलिये वे भारतवासियों में शिक्षा, संस्कृति, आस्था, आत्मविश्वास और गौरव-बोध को जाग्रत करने तथा नई पीढ़ी के चरित्र-निर्माण में अपने गुरुभाइयों, शिष्यों और भक्तों के साथ प्राणपण से लग गये थे।

शिक्षाप्राप्ति में विद्यार्थियों का कर्तव्य

छात्र-छात्राओं के चरित्र-निर्माण में सर्वप्रथम माता-

पिता-अभिभावकों तथा दूसरे क्रम में शिक्षकों के महत्त्वपूर्ण योगदान पर मैंने विस्तृत लेख विवेक ज्योति के दो अंकों सितम्बर, २०१५-२०१६ में प्रकाशित किये। अब शिक्षा-प्राप्ति में छात्र-छात्राओं का क्या कर्तव्य है, स्वयं उनकी क्या भूमिका है, इस पर हम थोड़ी चर्चा करेंगे।

शिक्षार्जन हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश

आज्ञाकारी और विनम्र बनें – शिक्षार्जन के लिये विद्यार्थियों को सर्वप्रथम आज्ञाकारी होना चाहिये। उन्हें अपने माता-पिता, शिक्षक और बड़े लोगों की विनम्रता से आज्ञा का पालन करना चाहिये।

ज्ञानार्जन हेतु मन की एकाग्रता बढ़ायें – ज्ञानार्जन के रहस्य को उद्‌घाटित करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''मन की शक्तियों को एकाग्र करने के सिवाय अन्य किसी तरह संसार में ये समस्त ज्ञान उपलब्ध हुए हैं?... मानव-मन की शक्ति की कोई सीमा नहीं है, वह जितना ही एकाग्र होता है, उतनी उसकी शक्ति एक लक्ष्य पर केन्द्रित होती है, यही रहस्य है।'' (वि. स. १-१४१)

अब प्रश्न उठता है कि मन को एकाग्र कैसे किया जाय? स्वामीजी कहते हैं, प्रतिदिन नियमित रूप से अभ्यास करने पर मन का यह नियत संयम प्रवाहाकार में चलता रहता है एवं उसकी स्थिरता होती है, तब मन सदैव एकाग्रशील रह सकता है। (वि. स. १-१८८)

भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – ''गुरु, कृष्ण और वैष्णव तीनों की कृपा हुई, लेकिन एक की कृपा अर्थात् मन की कृपा के बिना जीव की दुर्गति हुई।'' भगवान श्रीकृष्ण ने भी मन को एकाग्र करने का मूल मन्त्र नित्य अभ्यास बताया है। अत: शिक्षार्थी को मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिये।

पवित्र बनें और चरित्रवान लोगों का संग करें – मन लक्ष्य से विचलित न हो, इसके लिये विद्यार्थियों को लक्ष्य के प्रतिकूल और दिग्भ्रमित करनेवाले लोगों का संग नहीं करना चाहिये। अपने जीवन को पवित्र बनायें। किसी भी मादक पदार्थ का सेवन न करें और कोई कुत्सित, अकरणीय कर्म न करें। हमेशा सदाचारी, लक्ष्य में सहयोगी लोगों का ही संग करें। सत्संग से अनायास विकास होता है और कुसंग से पतन होता है, अत: कभी भी कुसंग न करें।

प्रमाद न करें – कहा गया है – **आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः**। आलस्य मानव का महान शत्रु है। अत: शिक्षार्थी कभी आलसी न बनें।

लक्ष्योन्मुखी पुरुषार्थ करें – बिना पुरुषार्थ कभी कोई सफलता नहीं मिलती, न ही कोई कृपा काम करती है। कहा गया है – **नास्त्युद्यमसमो बन्धुः –** उद्यम जैसा कोई बन्धु नहीं है। **उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः** – पुरुषार्थी सिंहपुरुष को ही लक्ष्मी मिलती है, अत: शिक्षापिपासु उद्यमी बनें, नित्य पठन-लेखन करें। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कर्मसिद्धि हेतु कहते हैं –

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।। १८/१४ ।।

कर्म की सफलता के कई कारणों में एक प्रयत्न भी है। प्रयत्न विद्यार्थी का तप और सफलता का मूल सूत्र है।

आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण करें और धैर्यशाली बनें – सदा आत्मनिरीक्षण करते रहें, इससे सजगता बनी रहेगी। आत्मविश्लेषण करने से गुण-दोषों का ज्ञान होगा और सुधार होगा, गुणवत्ता में विकास होगा। सब अच्छा करने के बाद धैर्यपूर्वक फल की प्रतीक्षा करें।

ज्ञानार्जन के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है –

आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं सब्रह्मचारिभ्यो पादं कालक्रमेण च।।

– विद्यार्थी एक चरण शिक्षक से, दूसरा चरण अपनी बुद्धि, क्षमता, सद्गुण, अनुशासन, आज्ञाकारिता, पुरुषार्थ से, तीसरा चरण अपने सहपाठियों, मित्रों से और चौथा चरण समय आने पर स्वानुभव से सीखता है। ये शिक्षाप्राप्ति के सोपान हैं। अन्त में, शिक्षार्थियों को देश, काल, परिस्थिति के अनुसार निम्नलिखित श्लोक का सारतत्त्व अनुकरणीय है –

काकचेष्टा वको ध्यानं स्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पंचलक्षणम्।।

लक्ष्य के प्रति काक जैसी चेष्टा, लक्ष्य में बगुले जैसी एकाग्रता, कुत्ते जैसी सजगता, अल्पाहारी तथा गृहत्याग, ये विद्यार्थी के पाँच लक्षण हैं। भगवान श्रीकृष्ण के यथायोग्य आहार-विहार, प्रयत्न, शयन-जागरण को भी विद्यार्थी अपना सकते हैं और जीवन में सफल हो सकते हैं। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (९)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

उसे शान्ति में विश्राम मिले

आगे बढ़ो ओ' आत्मन्!
अपने नक्षत्रजड़ित पथ पर,
हे परम आनन्दपूर्ण!
बढ़ो, जहाँ मुक्त विचार हैं,
जहाँ काल और देश से
दृष्टि धूमिल नहीं होती,
और जहाँ चिरन्तन शान्ति
और वरदान हैं तुम्हारे लिये!
जहाँ तुम्हारी सेवा
बलिदान को पूर्णत्व देगी,
जहाँ उदात्त प्रेम से भरे हृदयों में
तुम्हारा निवास होगा,
मधुर स्मृतियाँ देश और काल की
दूरियाँ खत्म कर देती हैं।
बलिवेदी के गुलाबों के समान
तुम्हारे पश्चात् विश्व को आपूरित करेंगी।
अब तुम बन्धनमुक्त हो,
तुम्हारी खोज परमानन्द तक पहुँच गयी,
अब तुम उसमें लीन हो,
जो मरण और जीवन बन कर आता है,
हे परोपकार-रत,
हे निःस्वार्थ प्राण, आगे बढ़ो!
इस संघर्षरत विश्व की
अब भी तुम सप्रेम सहायता करो।

इस कविता के साथ ही स्वामीजी ने गुडविन की माता को एक पत्र लिख भेजा था –

''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा। जो भी लोग मेरे किसी भी विचार से स्वयं को उपकृत हुआ मानते हैं, उन्हें यह जान लेना चाहिये कि उसका प्रायः प्रत्येक शब्द तक गुडविन के अथक तथा पूर्णतः निःस्वार्थ परिश्रम के फलस्वरूप ही प्रकाशित हो सका है। उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।''

शोक-सन्तप्त गुडविन की माता ने इस कविता तथा पत्र को पाकर कृतज्ञ चित्त के साथ लिख भेजा था कि स्वामीजी ने उनके 'दिवंगत पुत्र को किस प्रकार के उच्च प्रभाव से अनुप्राणित किया था।''

स्वामीजी की एक अन्य उक्ति से भी पता चलता है कि गुडविन की मृत्यु से उन्हें कितना भयंकर सदमा पहुँचा था। उन्होंने कहा था, ''मानो मेरा दाहिना हाथ ही विच्छिन्न हो गया है।'' और कहा था, ''मेरे व्याख्यानों का दौर समाप्त हो गया है।''

– ३ –

निवेदिता के साहित्य में स्वामीजी की कुछ अन्य विख्यात कविताओं की पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। १८९९ ई. की जुलाई के आरम्भ में किसी समय श्रीनगर में निवास करते समय स्वामीजी ने 'प्रबुद्ध-भारत' पत्रिका के लिये 'To the Fourth of July' और अगस्त-सितम्बर में किसी समय 'Kali the Mother' कविता की रचना की थी। निवेदिता के ग्रन्थों में इन सभी कविताओं की पृष्ठभूमि के विषय में सूचनाएँ मिलती हैं। इनमें से 'Kali the Mother' के विषय में हम आगे विशेष रूप से चर्चा करेंगे। निवेदिता के पत्र से १८९९ के जून में जलयान में यूरोप की यात्रा करते समय 'नाचुक ताहाते श्यामा' (नाचे उस पर श्यामा) शीर्षक बँगला कविता की रचना के विषय में भी जानकारी मिलती है।

निवेदिता के पत्रों में स्वामीजी

लिजेल रेमण्ड ने बड़ी संख्या में निवेदिता के जो पत्र एकत्र किये थे, उनमें से अधिकांश मिस मैक्लाउड को लिखे गये थे; और इन पत्रों के एक बड़े अंश की विषयवस्तु विवेकानन्द हैं। स्वामीजी जब तक जीवित रहे, तब तक ये पत्र स्वामीजी की उक्तियों तथा उनकी विभिन्न प्रकार की मनःस्थितियों के विवरण से परिपूर्ण रहा करते थे; और स्वामीजी के देहत्याग के बाद उनमें उनके संस्मरण

तथा विचारों का बाहुल्य रहता था। विवेकानन्द नामक एक सर्वग्रासी चेतना ने किस प्रकार निवेदिता के जीवन के हर हिस्से पर अधिकार जमा लिया था, उसी का थोड़ा परिचय इन पत्रों में मिलता है। इनमें हमें निवेदिता के आन्तरिक जीवन के एक अपूर्व इतिहास का परिचय मिलता है; जिसमें एक ओर तो है आत्मा के विपुल संग्राम की कहानी और दूसरी ओर है आत्म-विलोपन का शान्ति-संगीत। स्वयं विवेकानन्द की अन्तरात्मा की उद्दीपना या हाहाकार के असाधारण क्षण भी इनमें बारम्बार प्रस्फुटित हुए हैं। एक विपुल प्रतिभा के ऐश्वर्य से परिपूर्ण मानव किस प्रकार क्षण भर में ही संसार की सीमा को पार करके दिव्य सत्ता में उन्नीत हो जाया करता था, उसकी गौरवमय कहानी भी इन अंशों में प्राप्त होती है। स्वामीजी के इन विचारों के विकास की बातें बाद में थोड़ा-बहुत निवेदिता के ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हुई हैं, तथापि उन्होंने बहुत-सी बातें छोड़ दी थीं। पत्रों के माध्यम से उनकी अधिक अभिव्यक्ति तथा और अधिक जीवन्त सान्निध्य प्राप्त होता है। पाठकगण देखेंगे कि स्वामीजी के देहत्याग के बाद भी उनकी अशरीरी उपस्थिति के साथ तालमेल बिठाकर ही निवेदिता ने अपना बाकी जीवन बिताया था।

निवेदिता के पत्रों में प्राप्त स्वामीजी के सभी वर्णन या उक्तियाँ वर्तमान प्रसंग में नहीं दिये जा रहे हैं। मुख्यत: हम निवेदिता के अन्तर्जीवन से सम्बन्धित अंशों को ही चुनेंगे। इन अंशों में भी कहीं-कहीं रिक्त स्थान रह गये हैं, क्योंकि सभी पत्र हमें निश्चय ही नहीं मिल सके हैं। द्वितीयत: अन्तर्जीवन से जुड़े पत्र अधिकांशत: मैक्लाउड को लिखे गये होने के कारण जब मैक्लाउड स्वयं स्वामीजी के सान्निध्य में थीं, उस समय उन्हें पत्र लिखने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे अंशों के विवरण निवेदिता बहुधा अपनी डायरी में लिखकर संरक्षित कर लेती थीं। इन रिक्तियों को भरने के लिये उनकी डायरी-जैसी रचनाओं में से कुछ-कुछ अंश उद्धृत करके जोड़ दिये जायेंगे।

राजनीति, जनसेवा, शिक्षा, सामाजिक समस्या आदि अनेक विषयों पर स्वामीजी के साथ उनकी चर्चाएँ पत्रों में संरक्षित हैं। उनमें से भी प्रसंगानुसार अन्य विभिन्न परिच्छेदों में उद्धृत किये जायेंगे।

पाठकगण इसी बीच उद्धृत हो चुके, निवेदिता के भारत आने के पहले ही उन्हें लिखे गये स्वामीजी के पत्रों का स्मरण करें। निवेदिता १८९८ ई. के २८ जनवरी को कलकत्ते में मोम्बासा नामक जहाज से उतरीं। उनका स्वागत करने के लिये स्वामीजी स्वयं ही जहाज के घाट पर गये हुए थे। प्रारम्भ में निवेदिता चौरंगी के एक होटल में ठहरीं। ८ फरवरी को श्रीमती बुल तथा मिस मैक्लाउड कलकत्ते पहुँचीं। थोड़े दिनों बाद ही बेलूड़ में गंगातट पर रामकृष्ण मठ तथा मिशन के लिये जमीन खरीदने की व्यवस्था हुई और ओली बुल आदि ने उसी जमीन के एक पुराने मकान को ठीक करके उसी में निवास करने की इच्छा व्यक्त की। स्वामीजी सहमत हुए। उसी मकान में ओली बुल तथा मैक्लाउड के साथ निवेदिता भी निवास करने लगीं। इसी मकान में रहने के पूर्व स्थान का प्रथम दर्शन करने के बाद निवेदिता ने लिखा है : (मिस हैमण्ड को, १० फरवरी, १८९८) –

माननीया माता (श्रीमती ओली बुल) पिछले सोमवार को बड़े सबेरे आयीं। मंगलवार को हम स्वामीजी से मिले। कल हम लोगों ने उनके अतिथि के रूप में नदी के तट पर स्थित एक सुन्दर स्थान पर वनभोज किया, जिसे मिस मूलर उनके लिये मठ बनवाने हेतु खरीद रही हैं। वह स्थान विम्बलडन के कॉमन के किसी भी अंश के समान लगता है, परन्तु पेड़-पौधों को ध्यान से देखने पर भेद समझ में आ जाता है। उस प्रकार देखने पर समझ में आता है कि सिल्वर बर्च या बादाम या ओक वृक्ष के नीचे नहीं, बल्कि बौरों से युक्त आम के या बबूल के वृक्ष के नीचे हम बैठे हैं, इधर-उधर कहीं-कहीं एक-आध ताड़ के पेड़ हैं और नीचे फूलों से भरी हुई लताएँ फैली हुई हैं ...।

[हम पहले ही कह आये हैं कि हमें मिस मैक्लाउड को लिखे हुए पत्र ही अधिक मिले हैं; और इस समय मैक्लाउड स्वामीजी के सान्निध्य में भारत में ही थीं। अत: निवेदिता के पत्रों में स्वामीजी के प्रसंग अल्प हैं। तथापि निवेदिता डायरी रखती थीं और बाद में उस डायरी के विवरणों के आधार पर उन्होंने 'स्वामीजी के साथ भ्रमण' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस छोटे-से ग्रन्थ के विषय में इतना ही कहना काफी होगा – इतने छोटे आकार में इतने बृहत् तथा गम्भीर विषय की प्रस्तुति बहुत कम हुई है। जहाँ विवेकानन्द वक्ता हों और निवेदिता लेखिका हों, वहीं पर ऐसा होना सम्भव है। घटना का तारतम्य बनाये रखने के लिये इसी पुस्तक से कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं, विशेषकर वे अंश, जिनका निवेदिता ने परवर्ती काल में बारम्बार स्मरण किया है।] **(क्रमशः)**
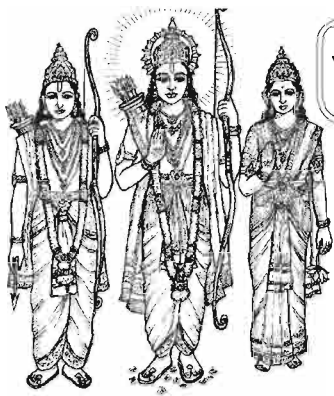
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (३/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

देखिहउँ जाइ चरन जल जाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई।।५/४१/५-८
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।५/४२।।

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीसत्यरूपानन्द जी महाराज एवं समुपस्थित संतों के चरणों में मैं सादर प्रणाम करता हूँ, नमन करता हूँ और यहाँ पर उपस्थित श्रद्धालु सभी श्रोतागण और भक्तिमती देवियों के प्रति मेरा सादर प्रणाम।

अभी आपके सामने जो पंक्तियाँ पढ़ी गई हैं, वे उस समय की हैं, जब रावण के द्वारा विभीषण का अपमान कर उनकी छाती पर चरण-प्रहार किया जाता है। उसके पश्चात् वे जब भगवान श्रीराम की दिशा में अग्रसर होते हैं, तो उस समय उनके हृदय में जो भावनाएँ उदित होती हैं, जो विचार उदित होते हैं, उन्हीं का इन पंक्तियों में गोस्वामीजी ने चित्रण किया है। वे अत्यन्त प्रसन्न हैं, उन्हें स्मरण आ रहा है – मैं उन चरणों का दर्शन करूँगा, जिनका स्पर्श पाकर ऋषिपत्नी चैतन्य हो गई, पवित्र हो गई। मुझे उन चरणों की उपलब्धि होगी, जिनके द्वारा दण्डकवन पवित्र हुआ। ये वे चरण हैं, जिन्हें जनकनन्दिनी अपने हृदय में धारण करती हैं और ये ही वे चरण हैं, जो कपट-मृग के पीछे भागते हैं। वे चरण जो भगवान शंकर के हृदय में विराजमान हैं और जिन चरणों को श्रीभरत अपने हृदय में धारण किये हुए हैं। मेरा कितना बड़ा सौभाग्य है कि उन चरणों का मैं दर्शन करूँगा।

यह जो मनोभाव है, उसकी पृष्ठभूमि सर्वथा भिन्न थी। विभीषण के हृदय में प्रारम्भ से ही भक्ति के प्रति आकर्षण है, भक्ति की महिमा उनके हृदय में प्रतिष्ठित है। इसीलिये यह सूत्र आता है। ये तीनों भाई एक साथ तपस्या कर रहे थे। तीनों को वरदान देने वे ही पात्र आए, उनमें कोई भिन्नता नहीं थी। वे दोनों पात्र थे भगवान शंकर और पितामह ब्रह्मा। वे तीनों के समक्ष आते हैं, सबसे पहले रावण के सामने, उसके पश्चात् कुम्भकर्ण के सामने और अन्त में विभीषण के सामने। तीनों से वे पूछते हैं, बताइये, आपको क्या चाहिये? सबसे अधिक महत्त्व का सूत्र यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। इसका अभिप्राय यही है कि तपस्या की बड़ी महिमा है। रामचरितमानस में कहा गया –

तप अधार सब सृष्टि भवानी।१/७२/५

सारी सृष्टि तपस्या के ही आधार पर टिकी हुई है। रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण तपस्या में रत हैं। तपस्या की एक सरल-सी व्याख्या यह है कि जब कोई व्यक्ति सांसारिक सुखों का परित्याग करके कष्ट का जीवन स्वीकार करता है, तो स्वभावतः लोग उसे तपस्वी कहते हैं। यह तपस्या स्वयं साधन है कि साध्य है? दूसरी दृष्टि से विचार करके देखिए। किसी-न-किसी मात्रा में तो प्रत्येक व्यक्ति को तपस्या करनी ही पड़ती है। जब कोई विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये रात-रात भर जगकर पढ़ता है, निद्रा और शय्या के सुख को छोड़ देता है, तो वह भी विद्यार्थी के द्वारा की जाने वाली तपस्या है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आप जब भी किसी वस्तु को पाना चाहते हैं, तो उसके लिये किसी-न-किसी प्रकार का कष्ट तो स्वीकार करना ही

पड़ता है। किन्तु प्रश्न यह है कि जो कष्ट हम उठाते हैं, या जिनके जीवन में बहुत बड़ी तपस्याएँ हैं, अब उस तपस्या के संदर्भ में आप विचार करके देखें, तो इसका एक बड़ा ही मार्मिक सूत्र रामचरितमानस में आता है। रावण भी तपस्या करता है, कुम्भकर्ण और विभीषण भी तपस्या करते हैं। आप यह भी पाते हैं कि महाराज दशरथ जब मनु के रूप में थे, तब उन्होंने भी बड़ी तपस्या की थी। पर वस्तुत: महत्त्व केवल तपस्या का ही नहीं है। तपस्या का उद्देश्य क्या है? हम जो अपने-अपने क्षेत्र में कष्ट उठाते हैं, तपस्या करते हैं या और भी तीव्रतम साधना में कष्ट उठाते हैं, क्या वे सभी समान रूप से वन्दनीय हैं? क्या वे सभी हमारे लिये समान रूप से आदर्श हैं? इसका उत्तर है कि ऐसा नहीं है।

मुख्य प्रश्न यह है कि उस तपस्या के द्वारा व्यक्ति पाना क्या चाहता है? यहीं अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जब महाराज मनु तपस्या करते हैं, तो उनका उद्देश्य होता है, ईश्वर की प्राप्ति, भगवद्-दर्शन। इसलिये वे दशरथ के रूप में जन्म लेकर भगवत्प्राप्ति के सुख का अनुभव करते हैं। तो एक ओर दशरथ के जीवन की चर्या इस रूप में सामने आती है। दूसरी ओर जो दशमुख है, वह भी तपस्वी है। वह इतना कठिन तपस्वी है कि ये तीनों भाई जब तपस्या करते हैं, तो ऐसा लगता है कि विषयों के प्रति उनका कोई आकर्षण नहीं है, परन्तु वस्तुत: जब तपस्या के परिणाम का अवसर आता है, तब अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगता है। वह अन्तर यह है कि हमारे अन्त:करण में महत्त्वबुद्धि किस वस्तु के प्रति है? चाहे हम जीवन में धर्म का पालन करें, चाहे तपस्या का जीवन स्वीकार करें, चाहे हम योगाभ्यास करें, आजकल तो योगाभ्यास की महिमा चारों ओर बड़ी परिव्याप्त है, योग को योग न कहकर लोग 'योगा' कहना पसन्द करते हैं। कई लोगों से मैं मिलता हूँ, तो कहते हैं, आजकल मैं योगा करता हूँ। देश में और आजकल विदेशों में भी योग की महिमा बड़ी व्याप्त है और वहाँ जाते हैं यहाँ के तथाकथित योगी और उन्हें बड़ा सम्मान प्राप्त होता है। हर प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। बस प्रश्न तो मूल रूप से यही है कि तपस्या के द्वारा, साधना के द्वारा, योग के द्वारा, ये सभी उत्कृष्ट साधन हैं, लेकिन इस साधना-तपस्या और योग के द्वारा हम पाना क्या चाहते हैं? महत्त्व तो इसका है। वह अन्तर स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। जब रावण के सामने ब्रह्मा और शंकर आकर खड़े होते हैं, तो कितना अनोखा दृश्य है वह। ब्रह्मा हैं विवेक देवता और भगवान शंकर हैं साक्षात् विश्वास। इससे बड़ी सौभाग्य की क्या बात होगी कि विवेक और विश्वास के देवता उनके सामने खड़े हैं और वे प्रेरित कर रहे हैं कि व्यक्ति यह अनुभव करे कि विवेक की चरम परिणति है ज्ञान और विश्वास की चरम परिणति है भक्ति।

गोस्वामीजी ने एक बड़ा मीठा विनोद भरा वाक्य कवितावली रामायण में कहा कि किसी व्यक्ति को लगता है कि शंकरजी बड़ी शीघ्रता से प्रसन्न होते हैं, उनका नाम आशुतोष है। उसके साथ-साथ एक शब्द और जुड़ा हुआ है कि वे बड़े औढरदानी हैं। जो माँगे, उसे वह दे भी देते हैं। इसीलिये देवताओं का ही नहीं, दैत्यों का भी झुकाव उनकी ओर बहुत होता है। जब वे सुनते हैं कि शंकरजी बड़े भोले-भाले हैं, प्रसन्न होकर वे जो माँगें वह दे देते हैं, तो उनको लगता है कि विष्णु की उपासना तो ठीक नहीं है, वे शीघ्रता से प्रसन्न भी नहीं होते और माँगने पर कह देंगे कि यह देंगे, यह नहीं देंगे या कह देंगे कि यह उचित है, यह अनुचित है। इसलिये वे शंकरजी को इस दृष्टि से देखते हैं। गोस्वामीजी ने विनोद भरे शब्दों में कहा कि शकंर जी प्रसन्न भी जल्दी हो गये और उस साधक के सामने प्रगट हो गये। अब साधक ने उनके रूप को देखा – पूरा शरीर नग्न है, चिता की भस्म लिपटी हुई है। हाथ में भिक्षापात्र के रूप में खोपड़ी है। वह तो देखकर मौन हो गया। शंकरजी ने पूछा, तुम मौन क्यों हो? क्या चाहते हो, माँग लो, बोल क्यों नहीं रहे हो? उसने कहा, महाराज, बुलाया तो था आपसे माँगने के लिये ही, पर आपको देखकर सोचना पड़ रहा है कि आपसे माँगें कि आपको दें? शंकरजी का बड़ा अनोखा दर्शन है। सप्तर्षियों ने यही कहा पार्वती से, तुम शिव से विवाह करना चाहती हो? तुम्हें पता है? यह उनका पहला विवाह नहीं है। इसमें भी लोग अन्तर मानते हैं। दूसरा विवाह उतना उत्कृष्ट नहीं माना जाता। वे पहले भी विवाह कर चुके हैं। और उसका परिणाम क्या हुआ? बोले

पुनि अवेढेरि मराएनि ताही।

सती के साथ ऐसा व्यवहार किया कि उन्होंने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। तुम जानती हो कि किसी का पत्नी से वियोग हो, तो वह दुखी होता है। लेकिन सती की मृत्यु के बाद अब शंकरजी के दो ही काम रह गये। क्या? या तो सोते रहते हैं और अगर जगते भी रहते हैं,

तो गृहिणी तो घर में है नहीं, तो भोजन कौन बनावे? तब तो बस एक ही चर्या है –

अब सुख सोवत, सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ नारि खटाहिं।।१/७९

जो व्यक्ति रातभर सोवे और दिन में भोजन की चिन्ता छोड़कर भिक्षापात्र लेकर जिस किसी के द्वार पर पहुँच जाय और उसे पत्नी वियोग से रंचमात्र दुख न हो, ऐसे व्यक्ति को पति बनाकर क्या तुम सुखी रह सकती हो? तो इसमें व्यंग्य यही है कि शिव को देखकर तो छाप यही पड़ती है। भगवान शंकर ने उस माँगने वाले से कहा कि देखो भाई, तुम यह देखकर कि मेरे पास तो देने के लिये कुछ नहीं है, माँगने में संकोच मत करो। माँगो, और माँगने में कमी मत करना, कम माँगना हो, तो और किसी देने वाले को बुला लो। मुझसे माँगना तो अधिक ही माँगना। यह लिखा हुआ है। गोस्वामीजी ने कहा – नागो कहै। शंकरजी का नाम भी लिया तो नंगा।

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू' जनि मागिये थोरो। (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १५३)

मुझे देखकर भ्रम में मत पड़ जाना, यहाँ कोई कमी नहीं है। बस एक बात ध्यान में रखना, बस थोड़ा मत माँगना। अगर कोई भगवान शंकर के इस सूत्र को समझ ले, तब तो वह धन्य हो जायगा। वह तो कोई भी होगा, तो वे यही कहेंगे कि थोड़ा मत माँगना। पर थोड़े का तात्पर्य क्या है? मान लीजिये किसी व्यक्ति ने एक लाख रुपया शंकरजी से माँगने का विचार किया हो और शंकरजी कह दें कि भई, थोड़ा मत माँगना, तो वह सोच लेगा कि एक करोड़ माँग ले, दस करोड़, सौ करोड़ माँग लें। पर रामायण में थोड़े और बहुत की परिभाषा दूसरी है। उसकी परिभाषा भगवान राम ने अयोध्यापुरवासियों को उपदेश देते हुए बताई। प्रभु जब राजा के रूप में सिंहासन पर सभासीन हैं, तब वे एक बार समस्त अयोध्यापुरवासियों को बुलाते हैं। तब भगवान श्रीराघवेन्द्र ने राजा के रूप में आदेश नहीं दिया। उसे आप उपदेश कह लीजिये, संदेश कह लीजिये, बड़े प्रेम से उन्होंने कहा – मित्रो, मैं राजा के रूप में आपको कोई आदेश नहीं दे रहा हूँ –

कहऊँ करउ जौ तुम्हहि सोहाई।

मैं अपना विचार प्रगट करता हूँ और आप लोगों को वह उचित लगे, तो उसे स्वीकार करें। उसके बाद प्रभु ने मनुष्य शरीर की दुर्लभता की ओर संकेत करते हुए ये शब्द कहे, मनुष्य शरीर साधना का धाम है –

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।७/८

बड़ी सांकेतिक भाषा है। इसका अभिप्राय है कि यह जो शरीर है, वह साधना का धाम है। सुन्दर शब्द चुना प्रभु ने। अगर प्रारम्भ में ही आपको 'विश्रामालय' नाम लिखा हुआ दिखाई दे, तो यह विश्राम करने का स्थान है, 'भोजनालय' दिखे, तो यह भोजन का स्थान है। भगवान कहते हैं कि व्यक्ति को ईश्वर ने जो शरीर दिया है, उसका निर्माण साधना के लिये हुआ है। यह कितने महत्त्व का सूत्र है? यों कह सकते हैं कि शास्त्रों में गुरु की बड़ी महिमा है, सद्गुरु प्राप्त करके व्यक्ति धन्य हो जाता है। किन्तु एक गुरु ऐसा है कि जो प्रत्येक व्यक्ति के साथ है। उसका भिन्न रूप भी है। इसका संकेत पिछले वर्ष की कथा में मिलेगा। श्रद्धेय स्वामीजी ने अभी स्मरण दिलाया था कि समुद्र से लंका घिरी हुई है। भगवान श्रीराम समुद्र के उस पार विराजमान हैं। विभीषण को उनके शरण में जाने के लिये इस समुद्र को पार करना होगा। समुद्र को पार करने की प्रक्रिया है। भगवान श्रीराम समस्त वानरों को लेकर उस समुद्र को पार करते हैं और लंका में पहुँचते हैं। उसी समुद्र को पार करके विभीषण प्रभु के पास आते हैं। इसका विस्तृत तात्पर्य आगे चलकर रखने की चेष्टा की जायेगी। **(क्रमशः)**

जिसने संयम न माना

जवाहरलाल 'मधुकर'

जिसने संयम न माना, उसका यम बनना सरल।
जिसने संभव न माना, उसका भव कटना गरल।।
आत्मानुशासन संकल्प, शाश्वत सन्मार्ग स्वरूप।
जिसनेस्वधर्म न माना, उसका अधर्म पनपना अटल।।
मोह-माया-ममता से, निर्लिप्त जीवन सर्वोत्तम।
जिसने यथार्थ न माना, उसका मृतप्रायः कमल।।
बिनु अणुव्रत जीवन वृथा, परिपूर्ण पाप भंडार है।
जिसने मोक्ष न माना, उसका मुक्त होना विफल।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (५९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

३०-१२-१९६०

महाराज – हमारे जैसा आधार सर्वदा योग में अवस्थित नहीं रह सकता। स्वामीजी ने कहा है – बुद्ध, ईसामसीह आदि प्रमुख अवतारों से भी एक श्रेणी उच्चतर स्वभाव के लोग हैं, जो सर्वदा समाधिस्थ रहते हैं, जैसे त्रैलंगस्वामी को थोड़ा-बहुत कहा जाता है। वे केवल स्वाभाविक कर्म करते हैं। किन्तु हमेशा तो समाधिस्थ होकर नहीं रहा जा सकता। फिर शेष समय क्या करें? तब चैतन्य भाव को प्रत्येक जीव में आरोपित करके ब्रह्म का आस्वादन करते हैं। देह-मन-बुद्धि से परे जो चैतन्य सत्ता है, उसकी पूजा भी एक उपाय है। इस उपाय के द्वारा समाधिस्थ हुआ जाता है।

गीता के नवम् अध्याय को 'राजविद्याराजगुह्ययोग' कहा जाता है। क्योंकि इसमें सगुण, निर्गुण और अनेक देवी-देवताओं की तत्त्वत: उपासना है। 'यत्करोषि' 'पत्रं पुष्पम्' का समर्पण है। श्रीरामकृष्ण देव ने एक कहानी सुनाई है। बगीचे के माली ने दो पके फल लाकर बाबू (मालिक) को दिए। बाबू खुश हो गए। यह सब उपासना की उच्च, चरम बातें हैं। इसके अलावा, हर अध्याय के अन्त में भगवान कहते हैं - मुझमें मन लगाओ। सब भक्ति की बातें हैं। देखो, वे ही ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिए ज्ञान न होने पर उनके साथ योग नहीं होगा। वे ही प्रेमस्वरूप हैं, इसलिए उनके साथ योग होने के लिये प्रेम चाहिए। वे तो नित्य-निरन्तर प्राणियों के साथ संयुक्त हैं, इसलिये उनके साथ योग चाहिए, जो यह समझता है, वह सभी कर्मों को उन्हें अर्पण करता है –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।९.२७।।
मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित:।।९.४।।

प्रश्न – महाराज, इस श्लोक का अर्थ क्या है?

महाराज – हमलोग सामान्यत: कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु में वही एक चैतन्य सत्ता विद्यमान है। किन्तु वास्तविक बात है कि चैतन्य समुद्र में नाम-रूप की तरंगों की भाँति अनेक वस्तुएँ उठ रही हैं और लय हो रही हैं। उसी एक चैतन्य-वस्तु से ही समस्त जगत प्रकाशित है। स्वामीजी के जीवन की घटना को देखो। हेदुआ पार्क की लोहे की रेलिंग और भात, सब कुछ को वे चिन्मय देखते हैं। ठाकुर को भी तो वैसा ही हुआ था। वे देखते हैं – चौखट, मार्बल, पूजा-सामग्री सब कुछ चिन्मय है।

गीता में जब कहते हैं – 'न च मत्स्थानि भूतानि' तब उनकी निर्विकल्प, निर्गुण सत्ता का उल्लेख किया गया है। जब भी कुछ हुआ है, तब उनकी सगुण सत्ता से ही हुआ है। जैसे देखो –

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावन:।।९.५।।

निर्गुण ब्रह्म की प्रकृति से सृष्टि-स्थिति-लय हो रहा है, किन्तु वे उदासीन हैं। फिर जब कहते हैं –

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।९.७।।

तब फिर सगुण ब्रह्म का उल्लेख करते हैं। सगुण और निर्गुण पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं। एक ही वस्तु को, एक ही समय में दो प्रकार से विचार करना कैसे सम्भव है, इसे हम समझ नहीं सकते। इसीलिए स्वामीजी कहते हैं – 'It appears to be so, it is a statement of facts'

– ऐसा प्रतीत होता है, यह एक सच्चाई है। पहले कहा गया इन्द्रजाल (माया) ! हमें सचमुच ऐसा ही लगता है, वे सब कुछ कर रहे हैं, किन्तु वे कहते हैं कि वे कुछ नहीं करते हैं –

मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।९.१०।।

मेरे (निर्गुण ब्रह्म) द्वारा न करने पर भी मेरे सान्निध्य के बिना सगुण की सृष्टि नहीं होगी। जैसे, एक व्यक्ति गाड़ी पर बैठा, गाड़ी चलने लगी। गाड़ी का चालक वह नहीं है, किन्तु उसके नहीं रहने से गाड़ी नहीं चलेगी। कैसे, जानते हो? जमींदार के मन में एक तालाब की इच्छा हुई। गाँव के लोगों ने आठ आना मजदूरी लेकर तालाब बनाया। जमींदार ने स्वयं तालाब के लिए कुछ नहीं किया, केवल संकल्प किया।

भगवान कहते हैं –

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।९.११।।

जब मैं देह धारण करता हूँ, तो लोग मुझे सगुण-ईश्वर न समझकर साधारण मनुष्य मानते हैं। हलधारी का भी ऐसा ही मनोभाव था।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।९.१५।।

साधन-भजन के द्वारा किस प्रकार का अनुभव होता है, यही बात भगवान इस श्लोक में बता रहे हैं। उस युग में साधारण लोग यज्ञ के अतिरिक्त अन्य कोई साधन-भजन नहीं समझते थे। इसीलिए भगवान यज्ञ के माध्यम से ही विभिन्न अनुभूतियों की बात कहते हैं। कोई-कोई 'सोऽहम्' भाव में स्वयं को परमात्मा के साथ अभेद-ज्ञान से मानो यज्ञ करके निर्गुण अनुभूति प्राप्त करते हैं। फिर कोई-कोई 'दासोऽहम्' भाव से सगुण ब्रह्म का, फिर उसी समय कोई-कोई उसी ब्रह्म का विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं के रूप में भजन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि वह सत्य का अनुभव कर रहा है। यही माया है। **(क्रमशः)**

बीती बातें बीते पल

आदर्श जीवन

बेलूड़ मठ में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र है। वहाँ ब्रह्मचारियों को श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उपदेश, प्रस्थानत्रय, भागवत इत्यादि विषयों पर शिक्षा दी जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण संघ का ध्येय-वाक्य 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' रखा था। इसी आदर्श के अनुरूप प्रशिक्षण केन्द्र में रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासियों द्वारा ब्रह्मचारियों को त्याग एवं सेवा की शिक्षा दी जाती है।

ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के प्रथम प्रिंसिपल श्रद्धेय स्वामी बोधात्मानन्द जी महाराज (भव महाराज) थे। स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज जब रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष थे, तब प्रशिक्षण केन्द्र के प्रत्येक ब्रह्मचारी को उनके साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार का अवसर प्राप्त होता था। इस साक्षात्कार में वे महाराज से आध्यात्मिक जीवन के बारे में प्रश्न पूछते थे।

एकबार एक ब्रह्मचारीजी की महाराज से मिलने की बारी आई। पूजनीय महाराज ने उनसे पूछा, "बोलो, तुम्हारा क्या प्रश्न है? तुम्हारे कठिन प्रश्न करने पर यदि उत्तर नहीं दे सका, तो फेल हो जाऊँगा।" ब्रह्मचारी जी ने विनयपूर्वक कहा, "महाराज, मेरा आध्यात्मिक जीवन तो अभी-अभी आरम्भ हुआ है। अभी से मेरे मन में भला क्या प्रश्न होंगे! आप आशीर्वाद दीजिए कि मुझे ठाकुर-माँ के श्रीचरणों में परमा भक्ति प्राप्त हो। उन्हीं के प्रति प्रेम हो, हृदय में त्याग-वैराग्य उत्पन्न हो। कैसे आदर्श साधु-जीवन बिता सकूँ, इस विषय में उपदेश दीजिए।"

पूजनीय महाराज ने कहा, "तुमने कितने ही उपदेश सुने हैं, कितनी ही पुस्तकें पढ़ी हैं, उनमें तो कितने ही उपदेश बताए गए हैं। परन्तु उनसे क्या हो रहा है ! किन्हीं आदर्श साधु का जीवन देखकर सीखना पड़ता है, उनका अनुसरण करना पड़ता है, तभी होता है। वह आदर्श साधु कौन है – यह कैसे जानोगे? किसी भी साधु का अनुकरण करने से नहीं होगा। मैं कहता हूँ, तुम अपने प्रिंसिपल महाराज – भव महाराज के जीवन का अनुसरण करना। उनका जीवन देखकर समझ सकोगे कि किस प्रकार एक सुन्दर साधु-जीवन का गठन किया जा सकता है। उनका जीवन एक आदर्श साधु-जीवन है।"

जब ब्रह्माचारीजी ने कहा कि पूरा समय काम-काज में निकल जाता है, साधन-भजन के लिए समय नहीं मिलता, तब महाराज ने कहा, "ये सभी काम भी ठाकुरजी के ही हैं। यदि स्वयं को ठाकुर के प्रति समर्पित कर दो, तो इन सभी कार्यों के द्वारा भी साधन-भजन हो रहा है। यथासम्भव अहंकार, मान-यश की आकांक्षा आदि को त्यागकर जब ठाकुर का कार्य समझकर पूरे मन-प्राण से करोगे, तो वही साधना का अंग हो जाएगा, जप-ध्यान भी वही है।"

OOO

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा-दर्शन

संकलक : दुलीचन्द जैन 'साहित्यरत्न', चेन्नई

शिक्षा का उद्देश्य

आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रेरणा देने वाले महापुरुष थे स्वामी विवेकानन्द। यद्यपि वे लगभग ११५ वर्ष पहले ही इस लोक से चले गये, लेकिन आज भी उनके विचार शिक्षा-क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उन्होंने शिक्षा की सर्वोत्तम परिभाषा दी – "मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।"[१] विश्व का असीम ज्ञान-भण्डार हमारे मन में है। उसी तरह मनुष्य की आत्मा में अनन्त शक्ति निहित है, इसको जानना, इसका बोध होना ही इसका प्रकट होना है।

स्वामीजी ने कहा, "शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो हमारे मस्तिष्क में ठूँस-ठूँसकर भर दी जाती हैं और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म गड़बड़ मचाया करती हैं। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण और चरित्र-निर्माण में सहायक हों। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े संत हो जाते और विश्वकोष महान ऋषि बन जाते।"[२]

स्वामीजी ने कहा कि हमें दो तरह की शिक्षा चाहिए। एक वह जो हमें रोजी-रोटी कमाना सिखाए तथा दूसरी वह जो हमें जीने का ढंग सिखाए। उन्हीं के शब्दों में, "हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए, जिससे चरित्र का निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि का विकास हो एवं हमारे मन में प्रचण्ड इच्छा-शक्ति जागृत हो। वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती, जो उनमें भूतदया का भाव और सिंह का साहस पैदा नहीं करती, क्या उसे भी हम शिक्षा का नाम दे सकते हैं? शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य है 'मनुष्यत्व' का निर्माण।"[३] उन्होंने कहा कि हम मनुष्य बनाने वाला धर्म चाहते हैं, मनुष्य बनाने वाले सिद्धान्त चाहते हैं तथा सभी क्षेत्रों में मनुष्य बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं।

शिक्षा का एकमेव मार्ग

"शिक्षा की प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग है और वह है 'एकाग्रता'। मन की एकाग्रता ही शिक्षा का सार है। एकाग्रता की शक्ति जितनी होगी, ज्ञान की प्राप्ति उतनी ही अधिक होगी। एक चर्मकार यदि एकाग्रचित्त होगा, तो अधिक अच्छा जूता बनाएगा एवं एक रसोइया एकाग्रचित्त होने से अधिक अच्छा भोजन बनायेगा। पैसा कमाने में अथवा ईश्वर की आराधना करने में या और कोई काम करने में जितनी अधिक एकाग्रता होगी, वह कार्य उतना ही अधिक अच्छा होगा। कला, संगीत आदि में अत्युच्च प्रवीणता इसी का फल है। जब मन को एकाग्र कर उसे अपने ही ऊपर लगाया जाता है, तब हमारी सारी इन्द्रियाँ हमारे अधीन हो जाती हैं।"

इसी तरह से हमारे भीतर श्रद्धा की आवश्यकता है। हमें अपने में सच्ची श्रद्धा जागृत करनी होगी तथा आत्मविश्वास पैदा करना होगा, तभी हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। वह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को छोटा बनाती है। जो अपने को दुर्बल समझता है वह दुर्बल ही हो जाता है।

चरित्र गठन के लिए शिक्षा

"प्रत्येक मनुष्य का चरित्र उसके संस्कारों द्वारा निर्मित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है और यदि अशुभ संस्कारों का, तो बुरा। यदि कोई मनुष्य निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहे, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे कर्म करता रहे, तो उसका मन भी बुरे संस्कारों से पूर्ण हो जायेगा। ये संस्कार उसमें दुष्कर्म करने की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देंगे। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे और अच्छे कार्य करे, तो उसमें अच्छे संस्कारों का प्रभाव पड़ेगा और वह सत्कार्य करने पर विवश हो जायेगा।"

व्यक्तित्व का विकास

सम्पूर्ण शिक्षा तथा समस्त अध्ययन का एकमेव उद्देश्य

है – मनुष्य के व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाना। स्वामीजी ने कहा कि मनुष्य के जीवन में दो-तृतीयांश उसका व्यक्तित्व होता है और शेष एक तृतीयांश होता है मनुष्य की बुद्धि और उसके कहे हुए शब्द। हमारे कर्म हमारे व्यक्तित्व की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र हैं। इसलिए हमें केवल बाह्य जीवन का ही नहीं, आन्तरिक जीवन का विकास करने का प्रयत्न करना चाहिए।

शिक्षक और शिष्य

स्वामीजी ने शिक्षा के विकास के लिए 'गुरु-गृहवास' पर जोर दिया। शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के सम्पर्क के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती। 'गु' कहते हैं अंधकार को और 'रु' कहते हैं उसे दूर करनेवाला। गुरु हमारे ज्ञान के अंधकार को दूर करता है। गुरु को 'आचार्य' भी कहते हैं। शिष्य को बाल्यकाल से ही ऐसे आचार्य के पास रहना चाहिए, जिसका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान उज्ज्वल हो।

प्राचीनकाल में विद्यार्थी को नि:शुल्क शिक्षा दी जाती थी। क्योंकि ऐसी धारणा थी, ज्ञान इतना पवित्र है कि उसे किसी को बेचना नहीं चाहिए। वहाँ तीन बातों पर जोर दिया जाता था – **सत्यं वद** (सदा सत्य बोलो), **धर्मं चर** (सदैव धर्म का पालन करो) एवं **स्वाध्यायान्मा प्रमदः** (स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करो) ।

शिष्य के लिये शुद्धता, ज्ञान की पिपासा और लगन के साथ परिश्रम की आवश्यकता है। विचार, वाणी और कार्य की पवित्रता भी अत्यन्त आवश्यक है।

गुरु के लिए आवश्यक है कि उन्हें शास्त्रों का मर्म ज्ञात हो तथा उनका चरित्र शुद्ध हो। बहुधा प्रश्न पूछा जाता है, हम गुरु के चरित्र और व्यक्तित्व की ओर ध्यान ही क्यों दें? ऐसा विचार ठीक नहीं है। वास्तव में गुरु का काम ही है कि वह शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति का संचार करे। प्राचीन काल में धन, नाम, यश और स्वार्थसिद्धि हेतु शिक्षा नहीं दी जाती थी।[४]

धर्म का महत्त्व

शिक्षा में धर्म का बहुत महत्त्व है। धर्म तो शिक्षा का मेरुदण्ड है। स्वामीजी ने कहा कि यहाँ धर्म से मेरा मतलब मेरा-तुम्हारा या अन्य किसी का धर्ममत नहीं है। यहाँ धर्म का अर्थ सनातन तत्त्वों से है। स्वामीजी ने कहा, ''पुराना धर्म कहता था, वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता, लेकिन नया धर्म कहता है, जो स्वयं में विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है।''[५] हमें सब प्राणियों पर एवं समस्त पशु-पक्षियों के प्रति भी प्रीति होनी चाहिए। हमें गीता और उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिए। उनके ही शब्दों में, ''अब फिर से उपनिषदों का, उस बलप्रद, आलोकप्रद, दिव्य दर्शनशास्त्र का आश्रय ग्रहण करो। उपनिषदों का सत्य अपनाओ, उनकी उपलब्धि कर उन्हें कार्य रूप में परिणत करो, देखोगे, भारत का उद्धार निश्चित है। उपनिषद शक्ति की विशाल खान है।''[६]

स्वामीजी ने सभी धर्मों की एकता का पाठ अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस से सीखा था। उन्होंने कहा कि संसार के भिन्न-भिन्न धर्म एक-दूसरे से असंगत या विरोधी नहीं हैं। वे सब एक ही सनातन-धर्म के भिन्न-भिन्न रूप हैं ।

हृदय को संस्कारित करो

पाश्चात्य सभ्यता की एक कमी यह है कि वहाँ हृदय की उपेक्षा कर केवल बौद्धिक शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा मनुष्य को दस गुना अधिक स्वार्थी बना देती है। जब हृदय और मस्तिष्क में द्वंद्व हो, तो हृदय का ही अनुसरण करना चाहिए। हृदय ही हमें उस उच्चतम राज्य में ले जाता है, जहाँ बुद्धि कभी पहुँच नहीं सकती।

नारी-शिक्षा

स्वामीजी ने कहा कि हमारे देश का पतन नारियों की उपेक्षा के कारण हुआ है। वे तो शक्ति की सजीव प्रतिमाएँ हैं। वैदिक और औपनिषदिक युग में मैत्रेयी, गार्गी आदि महिलाओं ने ऋषियों का स्थान प्राप्त किया। हजारों वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय में शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा था। अत: वे नारियों को पूर्ण शिक्षा देने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि नारियों को धार्मिक शिक्षा, चरित्र-गठन और ब्रह्मचर्य पालन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। स्वामीजी ने कहा कि भारत की नारियों को सीता के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। सीता पूर्ण विकसित नारीत्व का अनुपम आदर्श हैं। सीता ने सहिष्णुता का परमोच्च आदर्श स्थापित किया।

शारीरिक विकास

स्वामीजी ने शिक्षार्थी के शारीरिक विकास पर बहुत जोर दिया। शारीरिक दुर्बलता हमारे पतन का कारण है। हम मिलकर काम नहीं करते। हम कई बातों को तोते की तरह दुहराते हैं पर उनको आचरण में नहीं लाते। इस

प्रकार के दुर्बल शरीर एवं मस्तिष्क से कोई काम नहीं होता। स्वामीजी ने नवयुवकों को बलवान बनने का संदेश दिया। उनके ही शब्दों में, "मेरे नवयुवक मित्रो ! बलवान बनो। तुमको यही मेरी सलाह है। गीता के अभ्यास की अपेक्षा फुटबाल खेलने के द्वारा तुम स्वर्ग के अधिक निकट पहुँच जाओगे।"[७] आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु, दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो, अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिए मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़ें।

जन-सामान्य की शिक्षा

स्वामीजी निम्न वर्ग एवं गरीबों की दशा देखकर हमेशा चिन्तित रहते थे। उन्होंने कहा, मेरा अन्त:करण इतना भरा हुआ है कि मैं अपने भावों को प्रकट नहीं कर सकता। जब तक करोड़ों मनुष्य भूख और अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और अब उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।"[८] उन्होंने यह भी कहा कि आगामी वर्षों के लिए हमारा एक ही देवता होगा और वह है हमारी मातृभूमि भारत।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने विद्यार्थी के जीवन के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया था। स्वामीजी के उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर हमारी शिक्षा-प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन आना चाहिए। विशेषत: नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों पर अधिकतम जोर देने की नितान्त आवश्यकता है। ○○○

संदर्भ सूत्र – विवेकानन्द साहित्य

१. खंड-१, पृष्ठ-३५८, **२.** वही, **३.** खंड २ **४.** खंड ५ **५.** खंड ५ **६.** खंड ६ **७.** खंड ६ **८.** खंड ९

प्रेरक लघुकथा

प्रजापालन धर्म है, पर-पीड़न अभिशाप

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

संत गोरखनाथ जब नेपाल गए, तो उन्होंने भोगावती नदी के किनारे स्थित पाटन नामक ग्राम के एक मंदिर में निवास किया। तब उनके कुछ शिष्यों ने बताया – यहाँ का राजा महेन्द्रदेव अत्याचारों की परिसीमा लांघकर लोगों को यातनाएँ देता है। उसके कुशासन से प्रजा त्रस्त होकर अपने को असहाय अनुभव करती है। उनके कुछ शिष्य भी राजा के आतंक से भयभीत होकर देश छोड़ चुके हैं। गोरखनाथ जी ने कहा, "राजा को सबक सिखाने के लिए मैं ध्यानस्थ होना चाहता हूँ। जब तक मैं उठूँगा नहीं, राज्य में वर्षा नहीं होगी।"

वर्षा न होने से राज्य में हाहाकार मच गया। अनावृष्टि से राज्य में अकाल पड़ गया। अनाज खत्म होने से लोग भूख-प्यास से प्राण गँवाने लगे। राजा ने राज-ज्योतिषी को बुलाकर वर्षा ने होने का कारण पूछा, तो ज्योतिषी ने बताया कि संत गोरखनाथ ने आपकी अनीति और अन्याय से कुपित होकर वर्षा रोक दी है। राजा द्वारा यह पूछने पर कि संत का कोप कैसे दूर होगा? ज्योतिषी ने कहा, "आप उनकी एक मूर्ति बनवाकर रथ में बिठाकर पूजा-पाठ कर नगर में उसकी परिक्रमा कराएँ।"

रथ-परिक्रमा समाप्त होने पर राजा मंदिर गया। पश्चात्ताप-दग्ध हृदय से उसने गुरु गोरखनाथ को प्रणाम कर क्षमा माँगी और प्रजा को पीड़ा न देने का उसने वचन दिया। गुरु का क्रोध जाता रहा। वे उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा, "सुशासन देना राजा का धर्म है। प्रजा की पीड़ा राजा के सर्वनाश का कारण बनती है। प्रजा के सुख में ही राजा का सुख होता है। गुरु के उठते ही आकाश में बादल छा गए। वर्षा हुई और अकाल का संकट टल गया। राजा ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और कहा, "आज से मेरा कुल आपके नाम पर 'गोरखा' कहलाएगा।" ○○○

किसी व्यक्ति की श्रद्धा नष्ट करने का प्रयत्न मत करो । यदि हो सके तो उसे जो कुछ अधिक अच्छा हो, दे दो, यदि हो सके तो जिस स्तर पर वह खड़ा हो, उसे सहायता देकर उससे ऊपर उठा दो – परन्तु जिस स्थान पर वह था, उस स्थान से उसे नीचे मत गिराओ । सच्चा शिक्षक वही है, जो क्षण भर में स्वयं को हजारों व्यक्तियों में परिणत कर सके । सच्चा शिक्षक वही है, जो छात्र को सिखाने के लिए तत्काल छात्र की ही मनोभूमि में उतर आए तथा अपनी आत्मा को अपने छात्र की आत्मा में एकरूप कर सके और जो छात्र की ही दृष्टि से देख सके, उसी के कानों से सुन सके तथा उसी के मस्तिष्क से समझ सके । ऐसा ही आचार्य शिक्षा दे सकता है ।

– स्वामी विवेकानन्द

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२१)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज, स्वामीजी चाहते थे कि हमलोगों के जीवन में चारों योगों का समन्वय होगा। यहाँ इन चारों में प्रत्येक योग की मात्रा कितनी होगी?

महाराज – इसमें मात्रा कुछ नहीं है।

– मात्रा कुछ नहीं है, किन्तु किसी एक मात्रा में तो हम हिसाब करते हैं कि कितना ध्यान करूँगा, कितना कर्म करूँगा।

महाराज – नहीं, वैसा नहीं होता। तब तो ध्यान भी नहीं होगा, कर्म भी नहीं होगा।

– कैसे महाराज?

महाराज – क्या यह कोई आयुर्वेदिक औषधि है कि तुम मात्रा का हिसाब करोगे? इसमें कोई मात्रा नहीं है।

– एक तो समय की बात सोची जाती है कि दिन भर में कितने घण्टे ध्यान करूँगा और कितने घंटे स्वाध्याय करूँगा ।

महाराज – ऐसा करने से नहीं होता है।

– क्या एक दिनचर्या नहीं रहेगी?

महाराज – नहीं, दिनचर्या किसलिए? दिनचर्या इसलिए होती है कि साधन-भजन करना बन्द न हो। साधन-भजन करने के लिए दिनचर्या की आवश्यकता नहीं होती। करते जाओ।

– कर्म और उपासना में किसे कितना करेंगे?

महाराज – कहते हैं कि जो रसोई बनाती है, क्या वह बाल नहीं बाँधती। जो भक्ति करता है, क्या वह ज्ञान-विचार नहीं करता? जो ज्ञान-विचार करता है, क्या वह कर्म नहीं करता?

– महाराज, अर्थात् एक का अनुसरण करने से अन्य सब आ जाते हैं। जब हमलोग एक को कर रहे हैं, तो क्या उसमें अन्य सभी हैं?

महाराज – अरे ! जो तुम कर्म कर रहे हो, उसके साथ ज्ञान, भक्ति, योग सब कुछ एक साथ कर रहे हो। आँखों से देख रहे हो, कानों से सुन रहे हो और बात भी कर रहे हो, क्या सब एक साथ नहीं कर रहे हो?

– हाँ।

महाराज – वैसे ही

– क्या एक योग में शेष अन्य योग भी समाहित हैं?

महाराज – हाँ। समाहित हैं।

– किन्तु हमलोग कर्म करते हैं। कर्म के अन्त में पुन: उपासना के लिए बैठते हैं या अपनी दिनचर्या में उसका समय रखते हैं। यह तो अलग है।

महाराज – यही तो हमारी अपूर्णता है। जब कर्म करते हैं, तो योग नहीं करते हैं। जब योग करते हैं, तो भक्ति नहीं करते। जब भक्ति करते हैं, तब ज्ञान-विचार नहीं करते, इसे ही हमलोगों की अपूर्णता कहते हैं।

– महाराज, हमलोग साधारण लोगों की बात कह रहे हैं कि वह कम-से-कम एक योजना बनाता है, हिसाब करता है कि अमुक समय एक-डेढ़ घंटा जप करेगा।

महाराज – वह करेगा। किन्तु क्यों कर रहा है, उसका ध्यान रखेगा। प्रत्येक प्रयास मुक्ति या लक्ष्य के लिये करना होगा। उसमें इतना इसके लिए करना है, वैसा नहीं होगा। जब ज्ञान-विचार करेगा, तब भक्ति भी करेगा, जब भक्ति करेगा, तब कर्म भी करेगा। जब कर्म करेगा, तब योग भी करेगा। एक ही समय में करेगा, एकांगी नहीं होगा। समन्वय का अर्थ समझा तो?

– हाँ ! एक साथ ही सब होगा। एक करने से अन्य

योग भी होते रहेंगे।

महाराज – सभी योगों का समन्वय रहता है। लोग एक साथ ही सभी योग करते हैं। प्रत्येक योग में सभी योग समाहित हैं।

प्रश्न – महाराज, विवेकचूडामणि में शंकराचार्य जी ने प्रमाद की बात बहुत कही है, जिससे साधक-जीवन में प्रमाद न आ जाय। हमारे इस दैनन्दिन जीवन में वह कैसे होता है?

महाराज – उद्देश्य को मत भूलो। जो कुछ करोगे, लक्ष्य का ध्यान रखते हुए करोगे। मुक्ति या ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही चरम लक्ष्य है। उस लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही सब कुछ करना, यही अप्रमाद का तात्पर्य है।

– इस अप्रमाद के लिये अलग से कोई साधना है क्या?

महाराज – अप्रमाद की क्या साधना है? यही तो साधना है।

– प्रमाद को रोकने का प्रयास करना ही साधना है।

महाराज – प्रमाद करना नहीं, लक्ष्य को सदा मन में जगाये रखना।

प्रश्न – तोतापुरीजी को निर्विकल्प समाधि हुई थी, ब्रह्मज्ञान हुआ था। उसके बाद एक आदमी को मारने जा रहे हैं, क्रोधित हो गये थे। ऐसा क्यों होता है?

महाराज – ठाकुर कहते हैं – सभी महामाया के अधीन हैं।

– उन्होंने (तोतापुरीजी) तो ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया था?

महाराज – उससे क्या होगा ! जब शरीर धारण किया है, तो महामाया के अधीन ही हैं।

– अधीन अर्थात् क्या ?

महाराज – अधीन का अर्थ है, वह महामाया के द्वारा नियन्त्रित हो रहा है।

– ठाकुर कह रहे हैं, संसार का दुख-भोग इसके द्वारा हो गया। ठाकुर की इस बात का क्या तात्पर्य है महाराज? इधर श्री माँ को भी बहुत कष्ट हुआ। स्वामीजी और ठाकुर के अन्य शिष्यों को भी बहुत कष्ट-पीड़ा हुई। अभी भी संसार के लोगों का दुख कम तो नहीं देख रहा हूँ।

महाराज – ठाकुर ने जो कहा है, उसका तात्पर्य वे ही जानते हैं। लेकिन एक बात है। ईसाई कहते हैं – vicarious atonement – दूसरों के दुख को स्वयं ग्रहण कर ईसामसीह ने सूली पर अपने प्राण दे दिए । अब ये जो प्राण देना है, इसके द्वारा उन्होंने जगत के दुख का, पाप का प्रायश्चित्त किया। क्या संसार का पाप पूर्ण रूप से दूर हो गया? संसार को गीता में कहा गया है –

''अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'' (९/३३) – 'यह संसार अनित्य और दुखमय है। यहाँ आकर मेरा चिन्तन करो, मेरा भजन करो।' ऐसा जीवन ठाकुर दिखा गये हैं। यही देखो न, उन्होंने कितना कष्ट भोगा। उनका अपना तो निष्पाप शरीर था। फिर भी उन्हें इतना कष्ट क्यों हुआ? इसीलिये कह रहे हैं – जो आते हैं, उन्हें दुख-कष्ट स्वीकार करना पड़ता है। इस शरीर के द्वारा ही भोग होता है।

– अर्थात् संसार का दुख-भोग नष्ट हो जाएगा, इसका तात्पर्य यह नहीं है।

महाराज – ठीक कह रहे हो, नहीं तो संसार, संसार नहीं रह जाता। **(क्रमशः)**

प्राण सौंपे तेरे तुझको

चन्दमोहन, टुंडला

निद्राजित बनाकर मुझको निद्रा हर लिन्हीं मेरी ।
नींद-सुख मैं ले न पाया, वह दशा किन्हीं मेरी ।।
तुम ही मेरे मातु-पिता थे, बन्धु मेरे मित्र थे तुम ।
गुरु कहूँ या प्राण मेरे, दास मैं था स्वामी तुम ।।
शम्भु ने दी मृत्यु इच्छा, जी रहा मैं कष्ट सहकर ।
कर्म पूरा अब तुम्हारा, क्या करूँगा अब मैं जीकर ।।
कष्ट अपने कह न पाता, तुमने जो अगुआ बनाया ।
मर के फिर मैं जी हूँ जाता, तुमको जो हृदय बसाया ।।
अब हुआ हर कार्य पूरा, नींद की अब चाह मेरी ।
सूर्य दिन का ढल चुका है, रात्रि आई है घनेरी ।।
खेल मेरा पूर्ण होता, खेलकर मैं थक चुका हूँ ।
ठीक समझो गोद ले लो, रात-दिन मैं जग चुका हूँ ।।
अब तो माता कुछ नहीं है, मैं गया हूँ जान मुझको ।
सो चला मैं एक होने, प्राण सौंपे तेरे तुझको ।।

विवेकानन्द के जीवन और वाणी से छात्रों में सद्गुणों का विकास

शशांक मिश्र, शाहजहाँपुर

स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन एवं वाणी के माध्यम से छात्रों में आत्मविश्वास, देशप्रेम, मानव-सेवा, नैतिकता आदि सद्‌गुणों तथा मानवीय मूल्यों को सम्प्रेषित करने के लिये सबसे पहले शिक्षकों के लिये इन विषयों पर आधारित व्याख्यानमाला का आयोजन कर उनके अन्तर्मन में क्रमशः इन तथ्यों को समाहित करना चाहिये। तभी वे छात्रों को प्रेरित कर पायेंगे। वे कितना अधिक समझ रहे हैं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, स्वयं समझकर उनकी प्रस्तुतीकरण की विधि कितनी सरल-सरस है, यह प्रमुख है। इन मूल्यों के साथ वे अपने व्यक्तित्व में निहित स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों की झलक भी बालकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे। शिक्षक को छात्रों के मन में केवल ठूस-ठूसकर विचार नहीं भरना है। उन्हें प्रताड़ित या भयभीत कर नहीं समझाना है, बल्कि प्रेरणा के साथ ही प्राणशक्ति भी भरनी है। बच्चों को केवल घोड़े का चित्र दिखाकर प्रसन्न नहीं करना है, उन्हें यथार्थ के घोड़े की सवारी का रसास्वादन भी करवाना है। अलौकिक प्रतिभा या दैवी प्रेरणा के सहारे न रहकर स्वार्जित ज्ञानानुभव को परिश्रम के द्वारा प्रतिभाओं को समझाना है।

स्वामी विवेकानन्द की जीवनी और उनके जीवन-मूल्यों से छात्रों में निश्चय ही अप्रतिम राष्ट्र की उन्नति, प्रेम, सेवा एवं नैतिकता की भावना उत्पन्न की जा सकती है। उनमें स्वामीजी के आदर्श गुणों, उनके अनुभवों को उतार कर वर्तमान परिस्थितियों में असंख्य विसंगतियों के बाद भी नूतन स्वरूप, नवीन आकांक्षाओं, परिकल्पनाओं को जन्म दिया जा सकता है। उनमें स्वामीजी के जीवन और सन्देश को मात्र पढ़ने ही नहीं, बल्कि उनमें उनके आदर्शों को अपनाने और समाज एवं देश के सम्मुख प्रस्तुत करने की लगन और साहस भी उत्पन्न करना होगा। बच्चों को ऐसी प्रेरणा देनी होगी।

स्वामी विवेकानन्द छात्रों के सर्वश्रेष्ठ आदर्श हैं। उनके जीवन के अनुभव, ज्ञानपरक तर्कसंगत भाषणों के अंश छात्रों के लिये देश का भाग्य, समाज की स्थिति, परिवार की हानिप्रद परम्पराओं को बदलने का एक सफल माध्यम हो सकता है। स्वामीजी दीन-दुखियों के घर जाकर उनकी सेवा करने को कहते थे। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने के लिये स्वामीजी के बचपन की यह कहानी बच्चों को प्रेरणा दे सकती है। स्वामीजी के बचपन का नाम नरेन्द्र था। उनके पिताजी वकील थे। वे अपने यहाँ आनेवाले अलग-अलग जाति-धर्मों के लोगों के लिये अलग हुक्का रखते थे। नरेन्द्र ने एक दिन सभी हुक्कों में मुँह लगाया। उनके पिता विश्वनाथ दत्त के पूछने पर नरेन्द्र ने कहा – ''देखना चाहता था कि जाति व्यवस्था नहीं मानने से क्या होता है।'' एक स्थान पर उन्होंने कहा था –''याद रखना, राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है, ... राष्ट्र की भावी उन्नति ... जन-साधारण की अवस्था पर निर्भर है।'' वे मानते थे, जन-सामान्य के विकास के बिना देश, समाज का कल्याण सम्भव नहीं है। वे कहते हैं –''हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जन-साधारण की उपेक्षा है और हमारे अध:पतन का एक कारण। हम चाहें जितनी राजनीति करें, उससे तब तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक भारत की जनता एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होती।'' स्वामी विवेकानन्द की वाणी के सम्बन्ध में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है – ''आधुनिक समय में भारतवर्ष के भीतर विवेकानन्द ने एक महती वाणी का प्रचार किया है। वह किसी आचार के अनुसार नहीं। उन्होंने देश के सभी लोगों को पुकार कर कहा था – तुम सभी में ब्रह्म की शक्ति है। दरिद्रों के भीतर देवता तुम्हारी सेवा पाना चाहते हैं। इस बात ने युवकों के चित्त को जगा दिया है। इसीलिये उस वाणी का फल देश की सेवा में आज विलक्षण रूप से तथा अद्भुत त्याग से प्रकट हो रहा है। उनकी वाणी ने मनुष्य को जहाँ सम्मान दिया है, वहीं शक्ति

भी दी है .. देश के युवकों में जो प्रचण्ड अध्यवसाय का परिचय पाता हूँ, उसके मूल में है स्वामी विवेकानन्द की वाणी।'' यह गुरुदेव के शब्द उस समय के हैं, जब देश के युवक संसार की सबसे शक्तिशाली सत्ता से देश की स्वतन्त्रता के लिये जूझ रहे थे। वे आज भी देश की भूमि पर भूखी, अधनंगी भारतीय जनता के नये जीवन-निर्माण में उतने ही प्रासंगिक हैं, प्रकाश पुंज हैं। स्वामीजी ने एक बार ललकारते हुए कहा था – ''जब तक लाखों लोग भूखे अज्ञानी हैं, मैं हर उस व्यक्ति को विश्वासघाती समझता हूँ, जो उनके बल पर शिक्षित होकर उनकी तनिक भी परवाह नहीं करता।'' स्वामीजी की यह वाणी बच्चों को गरीबों के लिए कुछ करने के लिये प्रेरित करेगी।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी बाहर से कठोर प्रतीत होने पर भी सहानुभूतिसम्पन्न है। उनका पूरा जीवन संघर्षमय रहा है। उन्होंने कटु सत्यों का सामना करते हुए भी सिद्धान्तों से कोई समझौता नहीं किया। वे कैसे नरेन्द्र से स्वामी विवेकानन्द बने, यह बच्चों को बताना होगा।

१८८१ का साल, जब वे श्रीरामकृष्ण से पहली बार मिले, बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने प्रश्न पूछा – क्या आपने ईश्वर को देखा है? श्रीरामकृष्ण ने तत्काल उत्तर दिया – हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है। ठीक जैसे तुम लोगों को देखता हूँ, बल्कि इससे भी और अधिक स्पष्टता से। इसके बाद ही एक नये नरेन्द्र का जन्म हुआ और कालान्तर में वे विवेकानन्द में रूपान्तरित हो गये। वे विश्व धर्मसंसद में भाग लेने के लिये शिकागो जाने का मदुरै के राजा भास्कर सेतुपति का आग्रह स्वीकार कर ३१ मई १८९३ को मुम्बई से शिकागो के लिए रवाना हो गए। इस यात्रा के दौरान वे जापान, चीन और कनाडा भी गये। बहुत कठिनाई से उन्हें विश्व धर्मसंसद में प्रवेश मिला। उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी ११ सितम्बर, १८९३ को आर्ट इंस्टीट्यूट ऑफ शिकागों में भारतीय सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व किया। उनके व्याख्यान का प्रारम्भ 'बहनो और भाइयो' के सम्बोधन से हुआ, जिससे सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध हो गये। उन्होंने भारतीय परम्पराओं, वेदों और भारत के गौरवशाली आध्यात्मिक इतिहास तथा सर्वधर्मसमन्वय का उल्लेख किया। स्वामीजी द्वारा प्रदत्त ओजस्वी भाषण विश्व के इतिहास में एक ऐतिहासिक क्षण था। उसके बाद स्वामीजी पूरे अमेरिका में प्रसिद्ध हो गये, अमेरिकी समाचार पत्रों में छा गये। विश्व धर्मससंद को २७ सितम्बर, १८९३ तक उन्होंने कई बार सम्बोधित किया। शिकागो के अलावा बोस्टन और न्यूयार्क में भी उन्होंने प्रवचन दिये। वहाँ के विभिन्न कट्टरपन्थियों को उन्होंने अपने तर्कों से निरुत्तर किया। यूरोप और अमेरिका में असंख्य शिष्य-शिष्याओं को प्रेरणा दी।

स्वामी विवेकानन्द का जीवन जहाँ कटु अनुभवों व संघर्षों से भरा पड़ा है, वहीं विभिन्न स्तरों, देशों, व्यक्तियों, धर्माचार्यों, राजा-महाराजाओं, ऋषि-मुनियों के संस्मरणों, अनुभवों व यात्राओं से पूर्ण है। उनके भाषणों का प्रभाव महात्मा गाँधी, बिपिन चन्द्र पाल, बालगंगाधर तिलक और सुभाषचन्द्र बोस पर व्यापक रूप से पड़ा। छात्र ये सब जानकर अपने जीवन में इन आदर्शों को अपना सकते हैं।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था – ''स्वामी विवेकानन्द ही आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन के धर्मगुरु हैं।'' उनके भारतीय युवकों के प्रति संदेश ने ही १५ वर्ष के सुभाष में देश-प्रेम और त्याग की भावना के बीज बोए थे। नेताजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है –''विवेकानन्द मेरे जीवन में जब प्रथम प्रविष्ट हुए, उस समय मेरी अवस्था १५ साल से कम थी। उसके बाद मेरे भीतर एक प्रचण्ड विप्लव आया और मेरे सब विचार उलट-पुलट हो गए। ... मेरी अस्थि-मज्जा के भीतर एक अभिनव जागरण उत्पन्न हो गया।'' रोमाँ रोलाँ तो स्वामीजी को भारतीयता का पुरोधा – उत्थापक मानते थे। उन्होंने लिखा है – ''स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित संघ का शुद्ध सामाजिक, लोकोपकारी तथा सार्वजनीन स्वरूप स्पष्ट ही है। अधिकांश धर्म युक्ति, तर्क एवं आधुनिक जीवन की समस्याओं तथा आवश्यकताओं को श्रद्धा-विरोधी मानते हैं, परन्तु उनकी जगह यह संघ विज्ञान के सम-स्तर पर खड़े होने को प्रस्तुत था, भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति में सहयोग देने वाला था।''

स्वामी विवेकानन्द की वाणी से निकला एक-एक शब्द देश-प्रेम, मानव-सेवा, नैतिकता एवं आत्मविश्वास से युक्त है। वे कहते हैं, मानव सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है। क्योंकि मानव ईश्वर का अंश है।

वे चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा चाहते थे। वे ऐसा विकास चाहते थे, जिसमें भौतिक और अध्यात्म का समन्वय हो। इसके लिए उन्होंने अमेरिका, यूरोप, जापान, चीन आदि देशों की यात्राएँ कीं। अन्य धर्माचार्यों से उनका वाद-विवाद भी हुआ। कई बार मार्ग में लोगों ने उनका उपहास किया, किन्तु स्वामीजी सबको यथायोग्य समाधान देते हुए

आगे बढ़ते गये। इन सभी से छात्रों को परिचित करवाकर उनमें राष्ट्रसेवा की भावना, नैतिकता, सहनशीलता आदि सद्गुणों का विकास किया जा सकता है। इसके लिए छात्रों की विशेष कक्षा लेकर उन्हें बताना होगा। उनसे सम्बन्धित चित्रों, दृष्टान्तों व स्थानों को दिखलाना होगा। स्वामीजी के पूरे जीवन की झाँकी प्रस्तुत करनी होगी। साथ ही यह भी देखना होगा कि छात्र उसे एकाग्रचित्त से ग्रहण कर रहे हैं या नहीं। यदि छात्र रुचि से न सुनकर ग्रहण नहीं करते हैं, तो यह कदापि सफल नहीं होगा और समाज तथा देश को उचित प्रतिफल नहीं मिल सकेगा।

आत्मविश्वास, देश-प्रेम, सेवा, नैतिकता इत्यादि गुणों को छात्रों के समक्ष स्वामी विवेकानन्द जी की जीवनी एवं वाणी के माध्यम से प्रस्तुत करने के पहले उन्हें शिक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। यह देखना होगा कि क्या शिक्षक इन सभी विशिष्टताओं से युक्त हैं? क्या उन्होंने इन्हें हृदयंगम किया है? यदि नहीं, तो सर्वप्रथम हमें शिक्षकों में इन मुल्यों को आत्मसात् करवाना होगा। स्वामी विवेकानन्द जीवन के किसी भी पक्ष में ढोंग, बनावटीपन, प्रदर्शन के पक्षधर नहीं थे। इसलिए उनके शिक्षा-दर्शनों के व्याख्याताओं में इन सबका कोई स्थान नहीं होगा। अन्यथा बीज बोते रहेंगे, लेकिन उससे अंकुरण नहीं होगा, प्रतिफल रूपी कोई स्वस्थ पौधा न दिखायी पड़ेगा।

आज के वैज्ञानिक युग में हमें शिक्षा पद्धतियों में पूर्ण वैज्ञानिकता का समावेश करना होगा, जो आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर टिक सके, उसकी प्रामाणिकता का उदाहरण बन सके, अकाट्यता की अंगद चट्टान बन जाये। समाज की क्षुभित प्रतिक्रियाएँ, दिन-प्रतिदिन के परिवर्तनों के साथ पड़ती व्यसनों की मार उनको अपने पथ से किंचित भी डिगा न सकें। साथ ही हृदय व मन का संगम जिस बिन्दु पर हो जाय, वहीं स्थिर रहकर वह शिक्षा उसी दिशा में अग्रसर हो और निरन्तरता के साथ स्वामी विवेकानन्द के जीवन-दर्शन के बोध हेतु छात्र में ऐसी ललक उत्पन्न कर दे, कि वह जितना जाने, समझे, उतना ही अधिक जानने की उसमें जिज्ञासा उत्पन्न होती रहे। स्वामी विवेकानन्द के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण स्वप्न तीव्रगति से साकार हो, भारत का नवयुवक राष्ट्रनिर्माण में सनातन धर्म की विशिष्टताओं को अपने में समाहित कर समाज की विसंगितयों व देश की गरीबी को तोड़ता हुआ विश्व जनमानस के समक्ष आ जाये और देश की गरीबी मिटाने का पथ प्रशस्त हो।

श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के बाद स्वामीजी ने भारत-भ्रमण कर देश की निर्धन, अशिक्षित जनता को देखा, राजा-महाराजाओं, किसानों, व्यापारियों के साथ रहे और उन्हें जन-साधारण की सेवा हेतु प्रेरित किया।

१९२१ में बेलूड़ मठ में भाषण देते हुए महात्मा गाँधीजी ने कहा था – ''मैं आज यहाँ स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिवस पर उनकी पुण्य स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने आया हूँ। मैंने स्वामीजी के ग्रन्थ बड़े मनोयोग से पढ़े हैं। इससे देश के प्रति मेरा प्रेम हजारों गुना बढ़ गया है। युवकों से मेरा यह अनुरोध है कि जिस स्थान पर स्वामी विवेकानन्द ने निवास और देहत्याग किया, वहाँ से कुछ प्रेरणा लिये बिना खाली हाथ वापस न जायें।''

किसी देश को महान बनाने में दृढ़ इच्छाशक्ति और अदम्य साहस की आवश्यकता होती है। इसीलिये पं. नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में स्वामीजी की वाणी के सम्बन्ध में लिखा है – ''उनके व्याख्यानों और रचनाओं में एक स्वर बराबर ध्वनित हो रहा है, वह है, अभय हो जाओ, वीर बनो, दुर्बलता का परित्याग करो। उपनिषद की महान शिक्षा यही थी। स्वामीजी युवकों में लोहे जैसी माँसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु चाहते थे। वे युवकों में प्रचंड इच्छशक्ति चाहते थे, जो ब्रह्माण्ड के गूढ़तम रहस्य का भेदन करने में समर्थ हो तथा देश के लिए किसी भी विरोध, कष्ट, अपमान को सहने में तत्पर हो। स्वामीजी अपने देशवासियों को जड़ता के कूप से निकालकर मनुष्य बनाने, कर्मयोग के आदर्श से अनुप्राणित करने के लिये हँसते हुए नरक में जाने को तत्पर थे।''

उन्होंने युवाओं को आह्वान किया – भाईयो, हम सबको कठोर परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। वह देखो, भारतमाता धीरे-धीरे अपने नेत्र खोल रही है। ... उठो और नव जागरण तथा नवीन उत्साह से पहले की अपेक्षा महान गौरव से भूषित कर उन्हें भक्ति भाव से उस अनन्त सिंहासन पर प्रतिष्ठित करो।''

निष्कर्षत: छात्रों की अभिरुचि, मनोदशा, वर्तमान युग की विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर स्वामी विवेकानन्द की जीवनी व वाणी से ओतप्रोत शिक्षक ही छात्रों में स्वामीजी के आदर्शों व उनके उद्देश्यों को उनमें समाहित कर सकते हैं। साथ ही शिक्षक उनमें स्वामीजी की भाँति राष्ट्र, धर्म, गौरव, स्वाभिमान एवं गरीबी, अशिक्षा जैसी समस्याओं के उन्मूलन हेतु जागृति उत्पन्न कर सकते हैं। ○○○

मदनमोहन मालवीय

मदनमोहन मालवीय जी का जन्म प्रयाग में २५ दिसम्बर, १८६१ में हुआ था। उनके पिता बहुत धार्मिक थे और वे भागवत-कथा अच्छी करते थे। ईश्वर पर उनका अटूट विश्वास था। इसकी एक छोटी-सी घटना है। मदनमोहन बचपन में बहुत नटखट थे। एक दिन वे घिसटते हुए सीढ़ी से छज्जे पर चले गए। छज्जे पर उन्होंने खड़े होने का प्रयत्न किया। किन्तु जैसे ही बाहर-तेरह फुट ऊँचे छज्जे पर खड़े हुए, तो नीचे धड़ाम से गिरकर बेहोश हो गए। उनकी माँ रसोईघर में थीं और पिता पूजा कर रहे थे। माँ दौड़कर आईं और मदनमोहन के पिता को उलाहना देने लगीं कि बच्चा बेहोश हो गया है और वे जप कर रहे हैं। उनके पिता ने शान्तिपूर्वक कमण्डलु से पानी हाथ में लिया और मदनमोहन पर छिड़का। उन्हें तुरन्त होश आ गया और उनके पिता फिर से जप करने लग गए।

नौ वर्ष की अवस्था में बालक मदनमोहन का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। उनके पिता ही उनके आचार्य थे। उन्होंने अपने पुत्र को गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी। अब से मदनमोहन नियमित रूप से गायत्री मन्त्र का जप करने लगे। वे इतना जप करते थे कि उनकी माँ को भय हो जाता था कि उनका पुत्र साधु न हो जाए। बचपन में वे प्रतिदिन हनुमानजी के दर्शन करने जाते थे।

पढ़ाई में उनकी बहुत रुचि थी। उनका घर बहुत ही छोटा था और उसमें रहनेवाले बहुत लोग थे। शोरगुल भरे वातावरण में पढ़ना उनके लिए कठिन था। इसलिए वे पास की एक टूटी-फूटी कोठरी में शाम को लालटेन और पुस्तकें लेकर जाते और अगले दिन सुबह लौटते। ऐसा नहीं था कि वे हमेशा पढ़ाई ही किया करते थे। खेल-कूद में भी उनकी बहुत रुचि थी।

२४ वर्ष की अवस्था में वे अध्यापक हुए और तब से उन्हें पण्डित मदनमोहन मालवीय कहा जाने लगा। एकबार स्कूल की परीक्षा में मालवीय जी निरीक्षक थे। उन्होंने देखा कि एक विद्यार्थी नकल कर रहा है। उन्होंने उसे तुरन्त निकाल दिया। वह विद्यार्थी एक गुण्डा था और उसने मालवीयजी को धमकी दी। इस घटना के बाद बहुत-से लोगों ने मालवीयजी से कहा कि वे अकेले स्कूल न आया-जाया करें। किन्तु मालवीय जी कहाँ डरने वाले थे। वे बोले, ''क्या मेरे हाथ-पाँव नहीं हैं? यदि वह मुझ पर वार करेगा, तो मैं क्या उसे छोड़ दूँगा?'' मालवीयजी ने भी स्कूल में पहले की तरह अकेले पैदल आना-जाना शुरू रखा। उनके प्रभाव से वह गुण्डा प्रवृत्ति का लड़का सुधर गया। उसने मालवीयजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी।

मालवीयजी को जिस कार्य के लिए विशेष स्मरण किया जाता है, वह है उनके द्वारा संस्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। उनकी बहुत इच्छा थी कि देश में ऐसा एक विश्वविद्यालय हो, जिसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति और विद्याओं के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा भी प्रदान की जाए। तब हमारा देश आजाद नहीं हुआ था और इस प्रकार का बड़ा शिक्षा-संस्थान बनाने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। लोग उनकी मजाक करने लगे थे। सबसे बड़ी कठिनाई थी – इतने बड़े विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्रित करना। किन्तु मालवीयजी दृढ़-संकल्प थे। उन्होंने धन एकत्रित करने के लिए पूरे देश का दौरा किया। उन्होंने गरीब और धनी सभी के सामने अपनी झोली फैलाई। अपनी क्षमता के अनुसार कोई यदि एक पैसे का भी दान देता था, तो वे ले लेते थे। लोगों के लिए तो उनकी छवि एक सन्त की ही थी। मालवीयजी के अथक प्रयासों के फलस्वरूप १९१६ में काशी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

एकबार उन्होंने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा था, ''विश्वविद्यालय में निवास करने का प्रथम कर्तव्य यह है कि व्यायाम करके शरीर बनाएँ। पहले अपना स्वास्थ्य सुधारें, फिर पढ़ाई करें। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहे, तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं।'' हिन्दुओं की प्राचीन नगरी काशी में मालवीयजी द्वारा संस्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आज भी उनकी गौरव-गाथा श्रद्धापूर्वक गाता है। ○○○

वीरभोग्या वसुन्धरा

स्वामी मेधजानन्द

गाँव-नगरों के लगभग सभी चौक-चौराहों के कुछ नाम होते हैं। इनमें से कुछ सामान्य नाम लगभग सभी स्थानों में मिल जाते हैं, जैसे कि एम. जी. रोड, शहीद भगतसिंह चौक, महाराणा प्रताप चौक, स्वामी विवेकानन्द मार्ग, इत्यादि। कभी भी किसी कायर, स्वार्थी, आलसी और लम्पट व्यक्ति के नाम पर कोई स्मारक देखने में नहीं आता।

क्या कभी हमने सोचा है कि क्यों इन महान व्यक्तियों के नाम पर सड़क-चौराहे, भवन इत्यादि का नाम रखा जाता है? इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि उनके नाम से कोई स्मृति-चिह्न स्थापित कर हम उनके महान जीवन और कार्य के लिए उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। दूसरा कारण यह कि उनके स्मरण से हमें सतत प्रेरणा मिलती रहे कि हम भी उनके समान साहस, वीरता, त्याग और सेवा का जीवन जी सकें।

व्यक्ति महान कैसे बनता है और उसे कैसी कठोर परीक्षाओं से गुजरना होता है, इस विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''कितने ही तूफान पार करने पर मनुष्य शान्ति के राज्य में पहुँचता है। जिसे जितना बड़ा होना है, उसके लिए उतनी ही कठिन परीक्षा रखी गई है। परीक्षा रूपी कसौटी पर उसका जीवन कसने पर ही जगत ने उसको महान स्वीकार किया है। जो भीरु या कापुरुष होते हैं, वे समुद्र की लहरों को देखकर अपनी नाव किनारे पर ही रखते हैं। जो महावीर होते हैं, वे क्या किसी व्यर्थ बात पर ध्यान देते हैं? 'जो कुछ होना है सो हो, मैं अपना इष्टलाभ करके ही रहूँगा' – यही यथार्थ पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ के बिना कोई भी दैवी सहायता तुम्हारी जड़ता को दूर नहीं कर सकती।''

भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान इत्यादि के चरित्र और उपदेशों में भी हमें साहस, वीरता, सत्य, त्याग और सेवा के उपदेश प्राप्त होते हैं। श्रीराम के हाथों में धनुष-बाण, श्रीकृष्ण के हाथों में सुदर्शन चक्र और हनुमानजी के हाथों में गदा – इन सबका अर्थ यह है कि वे अपने जीवन के अन्तर्बाह्य शत्रुओं से निर्भयतापूर्वक लड़ने के लिए सदैव तत्पर थे। किन्तु हमारे सामने रावण, कंस, कालनेमि इत्यादि कोई बाहरी शत्रु नहीं है। शत्रु हमारे भीतर हैं और सबसे बड़ी समस्या यह है कि भूलवश हमने उन्हें अपना मित्र मान लिया है। आलस्य, कायरता, आत्म-विश्वास का अभाव, अपवित्रता, स्वार्थ इत्यादि हमारे भीतरी शत्रु हैं। युवा-जीवन के सबसे बड़े शत्रु हैं निराशा और निरुत्साह। यदि हृदय में आदर्श और उद्देश्य के प्रति वीरता का भाव हो, तो हम इन शत्रुओं के चपेट में नहीं आते।

साहसी मनुष्य अपनी असफलता पर निराश नहीं होता, बल्कि वह सफल होने के लिए और अधिक प्रयत्न करता है। जिस प्रकार चन्दन को घिसने से वह सुगन्ध प्रदान करता है, वैसे ही विकट परिस्थितियों में साहसी व्यक्ति का साहस और अधिक प्रकट होता है। एक बार प्रसिद्ध वैज्ञानिक थॉमस एल्वा एडीसन की प्रयोगशाला में आग लग गई। इस भयंकर आग में उनकी लगभग २० लाख डॉलर की सामग्री जल गई। उनके अनेक शोध-पत्र और दस्तावेज भी इस आग में जलकर राख हो गए। एडीसन का बेटा इतने बड़े नुकसान को देखकर रो रहा था, किन्तु वे स्वयं विचलित नहीं हुए। अगले दिन जब उनकी प्रयोगशाला के अनेक कर्मचारी दुखी मन से एकत्रित हुए, तो एडीसन ने धैर्यपूर्वक उन्हें कहा कि हम सबकी गलतियाँ जलकर राख हो गईं, अब हम नए सिरे से काम शुरू करेंगे।

जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में हो, उसे अपने क्षेत्र में वीरता और शान्तिपूर्वक कार्य करना है। विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई में, वैज्ञानिक को अपने शोध-कार्यों में, किसान को अपने कृषि क्षेत्र में, तो एक व्यवसायी को अपने व्यवसाय में निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ना है। कला, विज्ञान, वाणिज्य, कृषि इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में दृढ़तापूर्वक आगे बढ़कर हमें अपने कुल, समाज और देश का नाम उज्ज्वल करना है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''एक वीर की भाँति आगे बढ़ो। बाधाओं की परवाह मत करो। यह शरीर भला कितने दिनों के लिए है? ये सुख-दुख भला कितने दिनों के लिए हैं? जब मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है, तो भीतर की आत्मा को जगाकर कहो – मुझे अभय प्राप्त हो गया है...उठो, जागो और लक्ष्य को प्राप्त किए बिना रुको मत।'' ○○○

गीतातत्त्व चिन्तन (८/१३)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१, २, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के मार्च, १९९१ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है सं.)

इसके बाद सत्रहवें श्लोक में यह कहा गया है कि ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोक विनाशी हैं। इसमें ब्रह्मलोक की अवधि को श्रीकृष्ण बता रहे हैं –

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।१७।।

ब्रह्मणः (ब्रह्मा का) यत् (जो) अहः (एक दिन है), सहस्त्रयुग पर्यन्तम् (उसको एक हजार चतुर्युग की अवधिवाला) रात्रिम् (तथा रात्रि को भी) युगसहस्रान्ताम् (एक हजार चतुर्युग की अवधिवाली) (ये) (जो पुरुष) विदुः (तत्त्व से जानते हैं), ते (वे) जनाः (योगीजन) अहोरात्रविदः (काल के तत्त्व को जानने वाले हैं)

– "जो ब्रह्मा के दिन को एक हजार चतुर्युग तक की अवधिवाला जानते हैं तथा (ब्रह्मा की) रात को एक हजार चतुर्युग की अवधिवाली (जानते हैं) वे लोग काल तत्त्व को जाननेवाले हैं।"

कहते हैं कि जो ब्रह्मा का एक दिन है, वह सहस्रचतुर्युग के बराबर है। सहस्रचतुर्युग दिव्ययुग है, देवताओं का युग है। ब्रह्मा की एक रात कितनी बड़ी है? वह भी सहस्रचतुर्युग ही है। सहस्रचतुर्युग का मतलब है सहस्र दिव्य युग। हम जिसे एक वर्ष कहते हैं, वह देवताओं का एक दिन माना जाता है। देवताओं का एक महीना कितना बड़ा होगा? तीस वर्ष का होगा। अर्थात् हमारा तीस वर्ष देवताओं का महीना हुआ। देवताओं का वर्ष कितना हो गया, ३६०। क्योंकि यदि हमलोग भारतीय पद्धति से गणना करें, तो एक साल में ३६० दिन मानते हैं। अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार हम ३६५ दिन, कुछ घण्टे और कुछ मिनट मानते हैं। देवताओं के ३६० दिन अर्थात् हमारे ३६० वर्ष। इसको कहते हैं दिव्य वर्ष। एक दिव्य वर्ष ही मनुष्य के ३६०वर्ष हुए। इस गणना को लेकर आप चलें। अब चतुर्युग को लें। कलियुग कितना लम्बा होता है? कहा गया है १२ सौ दिव्य वर्ष। द्वापर युग कितना बड़ा होता है? कलियुग से दोगुना अर्थात् २४ सौ दिव्य वर्ष का होगा। इन चारों युगों को मिला दिया, तो वह १२ हजार दिव्य वर्ष होता है। १२ हजार दिव्य वर्ष ही एक दिव्य युग कहा जाएगा। यहाँ पर एक युग की कल्पना की गई। १२ हजार दिव्य वर्ष में मनुष्यों के कितने वर्ष होंगे? इसके लिये ३६० से उसे गुणा कर देना पड़ेगा। तब यह आता है ४३,२०,००० युग। इसको हम कहेंगे एक दिव्य युग। यह ब्रह्मा का एक युग कितना होता है? यदि आपको मनुष्य के हिसाब से समझना है, तो ४३,२०,००० को १००० से गुणा कर दीजिये, तो वह आता ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष। यह हुआ ब्रह्मा का एक दिन। उसकी इतनी ही रात भी है। ब्रह्मा कितने दिन जीवित रहता है? ऐसे १०० वर्षों तक। कितने अरब और कितने खरब वर्षों तक ब्रह्मा जीवित रहता है, परन्तु उस ब्रह्मा का अन्त अवश्यम्भावी है। वह भी दीनता को प्राप्त होता है और वह भी अपने पद से विच्युत होता है। ब्रह्मा का पद भी शाश्वत नहीं है। वह काल के द्वारा सीमित है, यही यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण बताना चाहते हैं। वे आगे १८वें श्लोक में कहते हैं –

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।१८।।

अहरागमे (ब्रह्मा के दिन के प्रारम्भ में) अव्यक्तात् (अव्यक्त से) सर्वाः (सब) व्यक्तयः (चराचर भूतगण) प्रभवन्ति (उत्पन्न होते हैं), रात्र्यागमे (ब्रह्मा की रात्रि आने पर) तत्र एव (उस उत्पत्ति के स्थान में ही) अव्यक्तसंज्ञके (अव्यक्त स्वरूप कारण में) प्रलीयन्ते (लीन हो जाते हैं)

– "(ब्रह्मा का) दिन आने पर अव्यक्त से समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा (ब्रह्मा की) रात्रि आने पर वे उसी अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।"

इसको समझना बहुत सरल है, जटिलता कुछ नहीं है। केवल गणित की जटिलता दिखाई देती है। मानो ब्रह्मा जितने भी वर्ष जीवित रहें, पर एक-न-दिन वे नाश को

प्राप्त होते हैं। जब ब्रह्मा का दिन आता है, तो यह सारा का सारा विश्व-प्रपञ्च अव्यक्त से व्यक्त होता है। ब्रह्मा जब रात में सो जाते हैं, तो मानो प्रलय हो गया। दिन में जब ब्रह्मा जागे, तो जो सब अव्यक्त में चला गया था, वह अब व्यक्त हो जाता है। शिकागो की विश्वधर्म महासभा में हिन्दू धर्म पर अपने भाषण में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि हिन्दू धर्म अत्यन्त वैज्ञानिक है। यह कहीं भी creation को नहीं मानता। creation का मतलब यह होता है कि पहले नहीं था और अब उत्पन्न हो गया। पर हिन्दू धर्म ऐसा नहीं मानता। वह अभिव्यक्ति को स्वीकार करता है। कल्प का मतलब है, जो प्रकट है, वह अप्रकट हो गया। इसी प्रकार यह चक्र चलता रहता है। इसीलिए हिन्दूधर्म creation को स्वीकार नहीं करता। ऐसा नहीं कहता कि विश्व ब्रह्माण्ड शून्य से पैदा हो गया। वह अभिव्यक्ति को, projection को मानता है। यहाँ पर यही कहा गया है – **अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे**। जब ब्रह्मा के दिन का आरम्भ होता है, तो जो सब अव्यक्त में लीन थे, वे सब व्यक्त हो जाते हैं। जब ब्रह्मा की रात आती है, तो मानो ब्रह्मा सो जाते हैं। तब क्या होता है ? जितना सब व्यक्त दिखाई देता है, वह सब सूक्ष्म होकर अव्यक्त में चला जाता है। जैसे इस शरीर को ही लें। यह शरीर कैसे अव्यक्त से व्यक्त होता है। बच्चा धीरे-धीरे व्यक्त होता जाता है। पहले जब पिता के वीर्य के साथ माता में जाता है, तब कितना अव्यक्त रहता है। जब भ्रूण के रूप में आता है, तब भी अव्यक्त ही रहता है। पर जब पैदा होता है, तो व्यक्त होता है, दिखाई देता है। परन्तु मृत्यु के बाद दिखाई नहीं देगा। यही तो संसार का नियम है। फिर १९वें श्लोक में कहते हैं –

भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे।।१९।।

पार्थ (हे पार्थ !) स: एव (वही) अयम् (यह) भूतग्राम: (भूत समुदाय) भूत्वा भूत्वा (उत्पन्न हो-होकर) अवश: (प्रकृति के वश हुआ) रात्र्यागमे (ब्रह्मा की रात आने पर) प्रलीयते (लीन होता है)। (और) अहरागमे (ब्रह्मा के दिन आने पर) (फिर) प्रभवति (उत्पन्न होता है)

–"हे पार्थ ! वही यह प्राणियों का समुदाय उत्पन्न हो-होकर (प्रकृति के) वश में होकर (ब्रह्मा की) रात्रि आने पर विलीन हो जाता है तथा (ब्रह्मा का) दिन आने पर पुन: उत्पन्न होता है।"

भूत का क्या अर्थ है? यह जो सर्वचराचर प्राणी समुदाय है, वह भूत है। वे सब बारम्बार पैदा होते हैं और बारम्बार लीन हो जाते हैं। मानो ब्रह्मा का दिन आया, तो प्रकट हो गये। ब्रह्मा की रात आई, तो लीन हो गये, प्रलय में चले गये। यह भूत-समुदाय बँधा हुआ है, स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्मा का दिन आया और मैं कहूँ कि मैं नहीं जगूँगा, तो ऐसा नहीं चलेगा। आना ही पड़ेगा, लाचार होकर, विवश होकर, बाध्य होकर आना ही पड़ता है। यह क्रम चलता रहता है। अब २०वें श्लोक में कहते हैं –

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन:।
य: स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।२०।।

तु (परन्तु) तस्मात् (उस) अव्यक्तात् (अव्यक्त से) पर: (परे) अन्य: (अन्य) अव्यक्त: (इन्द्रियों के अगोचर) सनातन: (सनातन) य: (जो) भाव: (भाव है) स: (वह) सर्वेषु (सब) भूतेषु (भूतों के) नश्यत्सु (नष्ट होने पर भी) न विनश्यति (नष्ट नहीं होता)

–"पर उस अव्यक्त से भिन्न जो दूसरा, इन्द्रियों के अगोचर, सनातन भाव है, वह सनातन प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।"

ये सब भूतसमुदाय अव्यक्त से व्यक्त होते हैं और व्यक्त से पुन: अव्यक्त में चले जाते हैं। यहाँ पर कहते हैं कि इस अव्यक्त से भी बढ़कर एक अव्यक्त है। सारे-के-सारे भूत, सारे-के-सारे प्राणी, भले ही नष्ट हो जाएँ, पर यह कभी नष्ट नहीं होता। इसका क्या मतलब? यहाँ कहा गया है कि यह सनातन अव्यक्त है। इस अव्यक्त से भी वह भिन्न है। ब्रह्मा के सोने पर यह सारा भूतसमुदाय अव्यक्त में समा जाता है। ब्रह्मा के उठने पर, दिन होने पर, फिर से अव्यक्त से व्यक्त हो जाता है। यह अव्यक्त ही प्रकृति है। यह प्रकृति ब्रह्म की शक्ति है। ब्रह्म जब इस शक्ति से युक्त होता है, तभी सृष्टि का कार्य होता है। आपके सामने हम वेदान्त का तत्त्व बतलाते हैं। ब्रह्म समस्त द्वैत से परे है। मानो वही एकमात्र निरपेक्ष सत्ता है। उसमें किसी प्रकार का द्वैतभाव नहीं है। अब उस ब्रह्म के भीतर में न जाने कहाँ से एक इच्छा उठी - **एकोऽहं बहुस्याम।** मैं अकेला हूँ, अनेक होऊँ। ज्योंही इच्छा उठी, उसने शक्ति का आह्वान किया। यह है ब्रह्म की शक्ति। श्रीरामकृष्ण उसे जगदम्बा कहा करते थे। यही परमेश्वरी है। इसी को काली या जगज्जननी कहा जाता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि जैसे ब्रह्म सत्य है, वैसे

शेष भाग पृष्ठ ४३१ पर

नाम-माहात्म्य

स्वामी धीरेशानन्द

(प्रस्तुत लेख बँगला मासिक 'उद्‌बोधन' के वर्ष ८८, अंक ९ (आश्विन १३९३,बंगाब्द) में प्रकाशित हुआ था। इसका बँगला से हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु इस पत्रिका के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्दजी ने किया है। – सं.)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "सुबह-शाम तालियाँ बजाकर भगवन्नाम करने से सारे पाप-ताप चले जायेंगे। जैसे वृक्ष के नीचे खड़े होकर तालियाँ बजाने से वृक्ष के सारे पक्षी उड़ जाते हैं, वैसे ही तालियाँ बजाकर भगवान का नाम लेने से देह-वृक्ष से सारे पक्षी उड़ जाते हैं।...

"पहले के दिनों में लोग यज्ञ-योग-तपस्या आदि किया करते थे, परन्तु इस कलिकाल में जीवों के प्राण अन्नगत हैं और मन भी दुर्बल हैं। यदि वे एकाग्रचित्त होकर भगवान का नाम लें, तो उनकी हर तरह की संसार-व्याधि नष्ट हो जाएगी।

"जान-बूझकर, अनजान में, भ्रमपूर्वक या किसी अन्य प्रकार से भी क्यों न हो, श्रीभगवान का नाम लेने से उसका फल अवश्य मिलेगा।

"इस कलियुग में नारदीय भक्तिमार्ग ही सरल है। अन्य युगों में तरह-तरह की कठोर साधनाओं का प्रचलन था। इस युग में उन साधनाओं द्वारा सिद्धि पाना बड़ा कठिन है। एक तो जीव की आयु ही बड़ी अल्प है;.. वह कठोर तपस्या भला कैसे करे?" (श्रीरामकृष्ण उपदेश, युगधर्म १-५)

कहावत है, "नींद में मिलता दैहिक सुख, नाम में मिलता मन का सुख।" अच्छी नींद हो, तो शरीर में बड़ी ताजगी तथा उत्साह का बोध होता है। सभी लोग अपनी-अपनी देह को लेकर ही व्यस्त रहते हैं; शरीर को पुष्ट करने हेतु आहार-विहार में मस्त रहते हैं। परन्तु – Man cannot live by bread alone – व्यक्ति केवल देहपोषण से ही शान्ति नहीं पा सकता। उसके मन को भी खुराक की जरूरत पड़ती है। इसीलिये काव्य, नाटक, दर्शनशास्त्र, साहित्य, कला, विज्ञान आदि विद्याओं की चर्चा भी आवश्यक है। विभिन्न विद्याओं की चर्चा से जीव को आनन्द तो मिलता है, परन्तु भगवन्नाम के जप से परम सात्त्विक आनन्द प्रकट होता है।

नाम में अकल्पनीय शक्ति है। इसे शब्दशक्ति कहते हैं। हम प्रत्यक्ष रूप से जीवन में देखते हैं कि एक शब्द से ही व्यक्ति चिरकाल के लिये शत्रु बन जाता है और एक ही शब्द से हमेशा के लिये मित्रता हो जाती है।

"शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वाद्-विद्मस्तन्मोह-हानतः।
माहात्म्यमेतत् शब्दस्य यद्‌विद्यां निरस्यति।
सुषुप्त इव निद्राया दुर्बलत्वाच्च बाधते।।"

– "शब्द में अकल्पनीय शक्ति है। उसी शक्ति के बल पर ज्ञानोत्पत्ति के द्वारा अज्ञान का नाश हो जाता है। शब्द की बड़ी महिमा है। दृष्टान्त देते हैं – किसी व्यक्ति का नाम लेकर पुकारने से, शब्द से सम्बन्ध हुए बिना ही सोया हुआ व्यक्ति जाग जाता है।" अज्ञान दुर्बल है और शब्दशक्ति उससे अधिक बलवान है। इसी प्रकार भगवन्नाम की शक्ति से काम आदि (षड्‌रिपुओं) का नाश हो जाता है, क्योंकि नाम की शक्ति के सामने वे सभी कमजोर पड़ जाते हैं।

'राम' – परमात्मा का ही एक नाम है। रामभक्त तुलसीदास कहते हैं –

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर।।

(रा.च.मा. १/२१)

– "यदि तुम अपने भीतर और बाहर का अन्धकार दूर करके प्रकाश पाना चाहते हो, तो अपनी देह के द्वार रूपी जिह्वा पर रामनाम रूपी मणि का स्निग्ध दीपक धारण कर लो।"

उच्च स्वर में नाम-कीर्तन के प्रभाव से हृदय की मलिनता और बाहर के श्रोताओं के अज्ञान का नाश हो जाता है। क्योंकि अशुद्धि तथा अविद्या दुर्बल हैं और नाम में प्रबल शक्ति विद्यमान है।

भगवान एक हैं, परन्तु उनके नाम असंख्य हैं। विभिन्न रुचियों के लोगों को सन्तुष्ट करने के लिये उन्होंने ही कृपा करके अनेक प्रकार के नाम धारण कर लिये हैं। यथा –

रामाय रामचन्द्राय रामभद्राय वेधसे
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।।

इस श्लोक में श्रीराम के सात नाम हैं। विभिन्न भक्तों की विभिन्न रुचियों के अनुसार इनमें से कोई भी नाम प्रिय हो सकता है। जैसा कि महाराज दशरथ को 'राम' यही नाम

प्रिय था। वे 'राम'-'राम' उच्चारण करके ही परम आनन्द का अनुभव करते थे। अपनी मृत्यु के समय भी –

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।। २/१५५

इस प्रकार छह बार 'राम'-नाम का उच्चारण करके महाराज दशरथ अपने प्रिय पुत्र के विरह में देह त्यागकर स्वर्गलोक में चले गये। माता कौशल्या के लिये उनका पुत्र राम, हृदय को हर्षित करनेवाले पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान आनन्ददायक था, अत: वे अपने पुत्र को 'रामचन्द्र' नाम से पुकारती थीं। अयोध्या के नागरिक लोग राम को हर तरह के कल्याण का निधान तथा सभी प्रकार के मंगल के आधार मानकर उन्हें 'रामभद्र' नाम से सम्बोधित करते थे। फिर उन्हीं को ऋषि-मुनि लोग इस विश्व-ब्रह्माण्ड के स्रष्टा के रूप में जानकर उनका 'विधाता' (वेधा) के रूप में उल्लेख करते थे। राम की प्रजा ने उन्हें रघुवंश के नाथ या रक्षक समझकर उन्हें 'रघुनाथ' नाम दिया था। अपने भक्तों के बीच वे 'सीतापति' नाम से परिचित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न लोग अपनी रुचि, स्नेह, ममता, श्रद्धा आदि विभिन्न भावों के अनुसार भगवान को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारना पसन्द करते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नाम-महिमा के प्रसंग में अपने 'शिक्षाष्टक' नामक स्तोत्र में कहा है –

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।

– "तुम्हारे नाम अनेकों प्रकार से प्रकट हुए हैं। उनमें तुमने अपनी सारी शक्ति अर्पित कर दी है; नाम-जप के विषय में समय आदि का कोई नियम भी नहीं है। हे प्रभो, तुमने हम लोगों पर इतनी कृपा कर रखी है, तो भी मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि इस जन्म में मेरा उनके प्रति अनुराग नहीं उत्पन्न हो सका है।"

ईश्वर परम कृपालु हैं। उनके अनेक नाम धारण करने और उन सभी नामों में अपनी परम पावनी शक्ति का संचार कर देने से ही उनकी महती कृपा समझ में आ जाती है। नाम-स्मरण बड़ी सहज साधना है। थोड़ी इच्छा हो, तो कोई भी अनायास ही इसे अपना सकता है। परन्तु दुर्भाग्यवश लोग इसे करना नहीं चाहते।

एक दिन एक भक्त 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' के लेखक श्रीम के समक्ष अपने मन की अशान्ति के बारे में बता रहे थे।

श्रीम ने कहा, "पूरे हृदय के साथ ठाकुरजी से प्रार्थना कीजिये। उनकी कृपा से सारी अशान्ति चली जायगी।"

भक्त – "मन प्रार्थना भी नहीं करना चाहता।"

श्रीम – "उनके समक्ष अपने मन का दुख व्यक्त करते हुए रोइये। रोने से उनकी कृपा होगी।"

भक्त – "रोना भी नहीं हो पाता।"

श्रीम – "तो फिर उनका नाम जपिये। नाम में रुचि हो, तो सारी अशान्ति मिट जायेगी।"

भक्त – "उनका नाम लेने की भी इच्छा नहीं होती।"

श्रीम – "तब तो मामला गम्भीर है। नाम में रुचि ही अन्तिम औषधि है। अगर मन यह भी न करना चाहे, तो समझ लेना होगा कि रोग असाध्य है। बचने की आशा कम है, इसलिये मामला गम्भीर है।"

कृपा चार प्रकार की होती है – ईश्वर-कृपा, गुरुकृपा, शास्त्रकृपा और आत्मकृपा। इनमें आत्मकृपा ही मुख्य है। आत्मकृपा का अर्थ है साधक का अपना पुरुषार्थ। आत्मकृपा न रहे, तो बाकी तीन कृपाएँ काम नहीं आतीं। बाकी तीन तो सर्वदा विद्यमान हैं। जीव आत्मकृपा के अभाव में ही बाकी तीन कृपाओं का सदुपयोग नहीं कर पाता और उसका सारा प्रयास निष्फल हो जाता है।

आचार्य शंकर कहते हैं –

अधिकारिणमाशास्ते फलसिद्धिः विशेषतः।
उपाया देशकालाद्याः सन्त्यस्मिन् सहकारिणः।।

– "किसी कार्य की फलसिद्धि विशेष रूप से उपयुक्त अधिकारी पर निर्भर करती है। देश-काल आदि तो उसके सहायक मात्र हैं।"

अनधिकारी के लिये शास्त्र भी निरर्थक हैं। क्योंकि "जिसमें स्वयं ही प्रज्ञा नहीं है, सूक्ष्म तत्त्व को समझने की क्षमता नहीं है, शास्त्र भला उसकी क्या सहायता कर सकता है? दर्पण क्या किसी अन्धे व्यक्ति को उसके मुख का प्रतिबिम्ब दिखा सकता है?" – ऐसे लोगों के लिये साधुसंग, महात्माओं की सेवा तथा श्रद्धापूर्वक नाम-कीर्तन की साधना ही उपयोगी हो सकती है।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "जानकर, अनजाने में या

भ्रमपूर्वक भी यदि भगवान का नाम लिया जाय, तो भी उसका फल अवश्य होगा।'' जानकर अर्थात् ज्ञानपूर्वक, अनजाने में अर्थात् अज्ञानपूर्वक जैसे अजामिल। ब्राह्मण अजामिल एक शूद्र महिला के प्रेम में पड़कर कई सन्तानों के पिता हुए और डकैती द्वारा परिवार का भरण-पोषण करते हुए कर्म-चाण्डाल हो गये। लोमश मुनि को असाध्य गात्रदाह (शरीर में जलन) रोग होने पर नारदजी ने उन्हें बताया कि किसी कर्म-चाण्डाल का जूठन खाने से उनका रोग दूर हो सकता है। लोमश मुनि ने उसी शूद्र महिला से काफी अनुनय करके थोड़ा-सा जूठा अन्न प्राप्त किया और उसी के सेवन से नीरोग हो गये। कृतज्ञता दिखाते हुए उन्होंने अजामिल से अनुरोध किया कि वह अपने छोटे पुत्र का नाम 'नारायण' रखे। अजामिल राजी हुआ। अपनी मृत्यु के समय अजामिल भयंकर यमदूतों को देखकर भयभीत होकर अपने छोटे पुत्र को 'नारायण आ', नारायण आ' कहकर पुकारने लगा। उसके उच्चारण में भूल होकर 'नारायणाय' शब्द निकलते ही उसके सारे पाप नष्ट हो गये, इस प्रकार भ्रमपूर्वक नाम उच्चारण करने से भी फल होता है –

मूर्खो जपति विष्णाय विद्वान् जपति विष्णवे।
उभयोस्तु फलं तुल्यं भावग्राही जनार्दनः।।

– विद्याहीन मूर्ख 'विष्णाय नमः' कहता है। व्याकरण के मत से 'विष्णवे नमः' शुद्ध है। परन्तु यह उसे नहीं मालूम। वह आग्रह तथा हृदय के साथ 'विष्णाय नमः' मंत्र का ही जप करता रहता है; और विद्वान् व्यक्ति 'विष्णवे नमः' कहकर शुद्ध मंत्र का जप करता है। परन्तु भगवान की दृष्टि में दोनों का ही फल समान है, क्योंकि वे भावग्राही हैं। वे लोगों के मन का भाव ही ग्रहण करते हैं, व्याकरण की शुद्धि-अशुद्धि की ओर ध्यान नहीं देते। छोटा शिशु 'पा' 'पा' कहकर पुकारता है, पिता समझ जाते हैं कि बच्चा उन्हीं को पुकार रहा है और वे स्नेहपूर्वक उसे उठाकर हृदय से लगा लेते हैं।

विचार करें, तो हर अक्षर और हर शब्द उन्हीं का नाम है, क्योंकि वे सर्व-वर्णमय हैं। रामप्रसाद कहते हैं, ''**काली पंचाशत-वर्णमयी वर्णे वर्णे विराज करे** – काली पचासों अक्षरोंवाली है, वह हर अक्षर में विराज करती है।'' कहते हैं कि अंग्रेज कवि टेनिसन अपना ही नाम जपते हुए भावसमाधि में चले जाते थे। वैसे यह कहा नहीं जा सकता कि उस अवस्था में उन्हें जो अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति हुई थी, वह स्थायी थी या नहीं। क्योंकि स्थायी अनुभूति विशेष साधन की अपेक्षा रखती है। परन्तु उन्हें परम तत्त्व की आभास-अनुभूति हुई थी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कहते हैं कि टेनिसन स्वगत में अपने नाम की आवृत्ति करके नित्य चैतन्य सत्ता की अनुभूति करते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में ऐसा लिखा है। यह बड़ा अद्भुत तथा आश्चर्यजनक है। उन्होंने लिखा है, 'बचपन से ही जब मैं पूर्णतः अकेला रहता था, तो एक तरह की जाग्रत भावसमाधि का अनुभव किया करता था। सामान्यतः अपना नाम ही स्वगत रूप से २-३ बार धीरे-धीरे उच्चारण करने पर यह भाव आ जाता था। सहसा व्यक्तित्व के एकीकरण तथा तीव्रता के फलस्वरूप मेरा व्यक्तित्व ही लुप्त हो जाता और धीरे-धीरे एक असीम अनन्त सत्ता में मिल जाता। यह कोई अज्ञानजनित मूढ़ अवस्था नहीं, बल्कि थी सभी प्रकार की भाषा के परे, स्पष्ट से भी स्पष्टतम, निश्चित वस्तु से भी निश्चिततम, तथा स्थूल जगत् से भिन्न, रहस्यमय सूक्ष्म तत्त्व से भी सूक्ष्मतम – जहाँ पर मृत्यु हास्यास्पद रूप में असम्भव थी। व्यक्तित्व का लोप यदि मान भी लिया जाय, तो भी वह विनाश के रूप में नहीं, बल्कि सत्य जीवन के रूप में ही प्रतिभात होता था। मैं उस अनुभूति का भाषा में वर्णन करने में असमर्थ होकर लज्जित हूँ। क्या मैंने नहीं कहा था कि यह अवस्था पूरी तौर से भाषा के अतीत है?'' (Quoted in 'Alfred Lord Tennyson, a memoir', by His Son, Hallan Tennyson, Macmillan, 1897, Vol. 1)

संसार के विभिन्न धर्मों में भगवान के नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। जैसे हिन्दू लोग 'राम', 'कृष्ण', 'हरि', 'काली', 'नारायण', 'शिव' आदि अनेक देवी-देवताओं के नाम का जप करते हैं । ईसाई लोग जप करते हैं – 'Ava maria', 'Jesus Christ my Lord, have mercy on me, a sinner'। मुसलमान लोग – 'अल वहीद', 'आहाद' (एक अद्वितीय), 'आक्राम' (दयालु), 'करीम' (उदार), 'कुहुम' (पवित्र), 'महीय' (जीवनदाता), 'कादिर' (शक्तिमान), 'कबीर' (महान्), 'हाकेम' (न्यायकर्ता), 'नूर' (प्रकाश) आदि अल्लाह के २४ प्रसिद्ध नामों का जप करते हैं; और बौद्ध लोग 'ॐ मणिपद्मे हुँ' मंत्र का जप करते हैं।

इस प्रकार देखने में आता है कि हर धर्म में नाम-जप

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

भारत की ऋषि परम्परा (२१)

स्वामी सत्यमयानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर

शाण्डिल्य

किसी प्राणी के पदचिह्नों एवं अन्य लक्षणों का अनुसरण कर वह जिस मार्ग से गया है, वहाँ पहुँचा जा सकता है। किन्तु यदि वह एक पक्षी हो, तो उस तक पहुँचना कठिन हो जाता है। भक्तिशास्त्र में शाण्डिल्य भक्तिसूत्र सहस्रों वर्षों से प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। अनेक साधकों को इस ग्रन्थ से सहायता प्राप्त हुई है। विद्वानों और टीकाकारों ने निष्ठापूर्वक इसका अध्ययन किया है और इसके ऊपर टीकाएँ लिखी हैं। किन्तु यदि पूछा जाए कि शाण्डिल्य कौन थे, तो इस प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर प्राप्त नहीं होता। उनका परिचय प्राप्त करने का प्रयास करना माने आकाश में पंछी के पदचिह्नों का अनुसरण करना है।

व्यक्ति की वाणी और कर्म उसका परिचय प्राप्त करने का उत्तम उपाय है। इसी प्रकार शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र के द्वारा ही हम शाण्डिल्य ऋषि के महान चरित्र को समझ सकेंगे। स्वभावत: वे एक महान भगवद्भक्त थे। किन्तु ऐसे भगवद्भक्त अपने क्षुद्र व्यक्तित्व को अपने प्रेमास्पद में विलीन कर देते हैं। संसार की चकाचौंध से वे स्वयं को दूर रखते हैं। अपने प्रसिद्ध भक्ति-ग्रन्थ में शाण्डिल्य अपना उल्लेख कहीं नहीं करते, इसलिए यहाँ भी उनके विषय में हमें कुछ नहीं प्राप्त होता। शाण्डिल्यजी ने अपनी भक्ति द्वारा जो उत्तम नौका निर्मित की है, उससे सहस्रों भक्त भवसागर के पार पहुँच गए हैं। इसलिए जनमानस में उनका नाम श्रद्धापूर्वक लिया जाता है।

शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र को नारद-भक्तिसूत्र का पूरक ग्रन्थ माना जाता है। शाण्डिल्यजी के इस ग्रन्थ में किंचित् बौद्धिक समीक्षा है, जबकि नारद-भक्तिसूत्र सरल और बोधगम्य है। साधकगण इन दोनों ग्रन्थों से आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं।

हिन्दूधर्म में वंशपरम्परा को मुख्य माना जाता है। यद्यपि ऋषि शाण्डिल्य के विषय में अधिक वर्णन प्राप्त नहीं होता, किन्तु उनके कश्यप वंश में होने का उल्लेख प्राप्त होता है। शाण्डिल्य के नाम से अन्य लोगों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। त्रेतायुग के राजा दिलीप के पुरोहित शाण्डिल्य थे। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जब सभी लौकिक इत्यादि नियमों की उपेक्षा कर त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग ले जाने के लिए

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

करने का विधान है। भगवान एक होने पर भी वे अनन्त-मूर्ति हैं और उनके अनन्त नाम हैं। पहले ही कहा गया है कि कोई भी भक्त अपनी रुचि तथा भाव के अनुसार किसी विशेष नाम के प्रति प्रेम रख सकते हैं। परन्तु इस कारण भगवान के अन्य नामों के माहात्म्य को कम समझना भूल है। जैसे एक ही व्यक्ति के कई नाम होते हैं और उनमें से किसी भी नाम को लेकर पुकारने से वह उत्तर देता है, यही बात भगवान के विषय में भी वैसी ही सत्य है। ईश्वर के सभी नामों का समान माहात्म्य है – इस भाव को स्वीकार करके भक्त को अपनी रुचि तथा भाव के अनुसार किसी नाम-विशेष को अपनाना चाहिये। हम लोग भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन में भी देखते हैं कि वे माँ-काली के उपासक होकर भी विभिन्न नामों के द्वारा भगवान का नाम-गुणगान किया करते थे। इसी भाव को अपना कर चलने से मन में किसी तरह की साम्प्रदायिकता या कट्टरता का भाव नहीं आ सकता।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, भगवान की प्राप्ति के लिये नाम-स्मरण अत्यन्त सहज साधन है। शास्त्र के अनुसार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, आदि भक्ति-साधना के प्रमुख अंगों में 'कीर्तन' अर्थात् भगवान के नाम-गुणगान का ही विशेष प्राधान्य दीख पड़ता है। क्योंकि नाम के प्रति प्रेम होने पर ही भक्ति के अन्य अंगों का प्रश्न उठता है। यदि उनके नाम से अरुचि हो, तो उनके बारे में श्रवण, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा-अर्चन आदि भाव नहीं आ सकते। भगवान के प्रति पहले से प्रेम न हो, तो भी उनका नाम-स्मरण करते-करते क्रमश: उनके प्रति प्रेम या अनुराग उत्पन्न होता है। श्रीमाँ (सारदा देवी) ने कहा था, 'जपात् सिद्धि:' अर्थात् केवल जप करने मात्र से ही सिद्धि मिल जाती है। 'जप' शब्द का अर्थ है भगवान के नाम का बारम्बार उच्चारण करना। भगवान का नाम जपते-जपते भक्त क्रमश: एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि उसे 'नाम तथा नामी के बीच अभिन्नता' की अनुभूति हो सकती है। ○○○

यज्ञ करा रहे थे, तब शाण्डिल्य उसमें पुरोहित थे। एक अन्य कल्प में वे नंद राजा के पुरोहित थे। राजा शतन्विक और उनकी रानी निसंतान थे। वे पुत्रेष्टि यज्ञ कराने हेतु शाण्डिल्य के पास गए और उन्हें पुत्रप्राप्ति हुई। उनके पुत्र बाद में प्रसिद्ध सम्राट सहस्रनीक हुए। महाभारत में जब पितामह भीष्म बाण से आहत होने के बाद शरशय्या पर लेटकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे, तब अनेक ऋषियों के साथ महर्षि शाण्डिल्य भी अपनी आदरांजलि उन्हें अर्पित करने गए थे।

छान्दोग्य उपनिषद में शाण्डिल्य-विद्या नामक एक महत्त्वपूर्ण उपासना का वर्णन आता है। किन्तु इसके रचयिता कोई अन्य ऋषि शाण्डिल्य प्रतीत होते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद में भी शाण्डिल्य ऋषि का नाम अनेक बार आता है। शाण्डिल्य संहिता और शाण्डिल्योपनिषद नामक दो ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं।

कहते हैं कि किसी धर्मविरोधी ग्रन्थ की रचना करने पर शाण्डिल्य ऋषि को नरक-यातना भुगतनी पड़ी थी। शाण्डिल्य के पुत्रद्वय शंख और लिखित ने दो धर्मग्रन्थों की रचना की थी।

विद्वानों ने शाण्डिल्य भक्तिसूत्र का रचनाकाल ई. २०० से ९०० के बीच माना है। भक्तिशास्त्रों में यह एक प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ चार भागों में है – प्रमाण, प्रमेय, साधनाएँ और मुक्ति। इस ग्रन्थ में भक्ति के दार्शनिक दृष्टिकोण का वर्णन है। इसके अलावा ईश्वर-प्राप्ति हेतु व्यावहारिक निर्देशों का भी उल्लेख है।

याज्ञवल्क्य

वेदों के गूढ़ मन्त्र और अनुष्ठान हमें भव्य और रहस्यमयी उपनिषदों की ओर ले जाते हैं। मानव इतिहास में अन्यत्र कहीं भी इतने गहन, उदात्त, उत्कृष्ट काव्यपूर्ण और विभिन्न स्तरों पर प्रदत्त आत्मज्ञान के इन उपदेशों की तुलना नहीं की जा सकती । उपनिषदों के रचनाकार ऋषियों का नाम कदाचित् ही प्राप्त होता है। उन ऋषियों की पवित्रता, निडरता, विद्वत्ता, चारित्र्य, बौद्धिक तेज, गुरु-परम्परा, तर्कवाद और सत्य के लिए सर्वस्व त्याग करने के उनके साहस को देखकर व्यक्ति चकित हो जाता है कि क्या सचमुच मनुष्य इस सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो सकता है !

महर्षि याज्ञवल्क्य ऐसे ही एक महानतम ऋषि थे। आज भी उपनिषदों के अध्येता इन ऋषिप्रवर के विलक्षण व्यक्तित्व को देखकर न केवल चकित हो जाते हैं, अपितु गहन श्रद्धा से उनका मस्तक अवनत हो जाता है। याज्ञवल्क्य महर्षियों में ही नहीं, अपितु देवताओं में भी श्रेष्ठतर थे। वे सर्वज्ञ थे और उनके आत्मज्ञान सम्बन्धी उपदेश करामलकवत् प्रत्यक्ष और बोधगम्य थे।
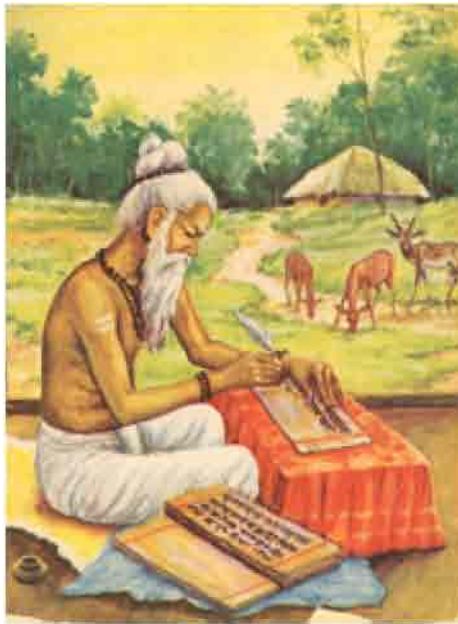
यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं – तैत्तिरीय और वाजसनेयी । उन्हें कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद भी कहा जाता है। शुक्ल यजुर्वेद की रचना याज्ञवल्क्य के द्वारा मानी जाती है। उन्हें यह शाखा कैसे प्राप्त हुई, इसकी रोचक कथा है।

याज्ञवल्क्य महर्षि वैशम्पायन के शिष्य थे और इनकी बहन के पुत्र भी थे। एकबार अपने पिता के श्राद्ध में व्यस्त होने के कारण वैशम्पायन ऋषियों की सभा में उपस्थित न हो सके। इस अनुपस्थिति के कारण दण्ड के रूप में उन्हें एक प्रायश्चित्त करना था। उन्होंने अपने सभी विद्यार्थियों को मिलकर इसका प्रायश्चित्त करने के लिए कहा। युवक याज्ञवल्क्य ने इसमें बाधा डालते हुए कहा कि अन्य सभी छात्र छोटे हैं और उनके बदले वे अकेले ही प्रायश्चित्त कर लेंगे। वैशम्पायन ने उनका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, किन्तु याज्ञवल्क्य भी मान नहीं रहे थे।

अपने प्रिय शिष्य याज्ञवल्क्य का हठ देखकर वैशम्पायन ने उन्हें बहुत डाँटा और अपने द्वारा प्रदान की गई समस्त विद्या लौटाकर उन्हें गुरुकुल छोड़कर जाने के लिए कहा। गुरु की आज्ञा का पालन कर याज्ञवल्क्य ने अन्न रूप में गुरु द्वारा प्रदान की गई सभी ऋचाएँ उगल दीं। वैशम्पायन ने अपने अन्य शिष्यों से कहा कि वे तित्तिर (तीतर) बनकर सब ऋचाएँ ग्रहण कर लें, अर्थात याज्ञवल्क्य द्वारा त्यक्त वैदिक ज्ञान को ग्रहण करें।

याज्ञवल्क्य वहाँ से चले गए, किन्तु अपने गुरु से सम्बन्ध टूटने से उनके मन में विक्षोभ उत्पन्न हुआ। गुरु-

शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र माना जाता है और गुरु-शिष्य परम्परा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। याज्ञवल्क्य ने सूर्यदेवता को प्रसन्न करने हेतु अनेक वर्षों तक घोर तपस्या की। सूर्यदेवता उनकी भक्ति पर प्रसन्न हुए और अश्व का रूप धारण कर उन्हें उपदेश प्रदान किए। चूँकि यह तेजोमय विद्या भगवान सूर्य से प्राप्त हुई, इसलिए इसका नाम शुक्ल यजुर्वेद हुआ और याज्ञवल्क्य द्वारा उगली हुई विद्या का नाम कृष्ण यजुर्वेद हुआ।

याज्ञवल्क्य के उपदेशों से ज्ञात होता है कि वे न केवल ब्रह्मज्ञों में श्रेष्ठ थे, अपितु कर्मकाण्ड और अन्य विद्याओं में भी प्रवीण थे। उनका व्यक्तित्व आध्यात्मिकता, निर्भयता, विद्वत्ता, साहस, पाण्डित्य और बुद्धि-चातुर्य का दुर्लभ सम्मिश्रण था। ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादन करने वाले वेदों के वे कुशल आचार्य थे, इसलिए उनके अनेक शिष्य थे। इन गुणों के अतिरिक्त एक कुशल आचार्य को धैर्यवान, स्नेहमय, आत्म-त्यागी और दयामय भी होना चाहिए। आचार्य के इन गुणों से शिष्यों का उत्साह भी सदैव ऊँचा बना रहता है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''याज्ञवल्क्य और मनु जैसे ऋषियों का चरित्र पवित्रता और नि:स्वार्थ कर्म से पूर्ण था।''

याज्ञवल्क्य का बाह्य-व्यक्तित्व एक महान आर्यऋषि सदृश था। उनका तेजोमय मुख, उज्ज्वल नेत्र, जटाजूट केश और सुडौल शरीर था। उनकी मैत्रेयी और कात्यायनी नाम की दो पत्नियाँ थीं। उस समय की प्रथा के अनुसार याज्ञवल्क्य की पत्नियाँ भी उनके अनेक शिष्यों की देखभाल में पूरा समय व्यस्त रहती होंगी। गुरुपत्नी का बहुत आदर किया जाता था और गुरुकुल में आनेवाले प्रत्येक छात्र के लिए वे माता के समान होती थीं। ऐसा नहीं था कि स्त्रियों की स्वतन्त्रता इसी कार्य तक सीमित थी। प्राचीन भारत में कन्याएँ भी अन्य छात्रों सहित वेदाध्ययन करती थीं। वे मूँज-मेखला धारण करती थीं और जो बाद में पवित्र सूत वाला जनेऊ हुआ। प्राचीन भारत में कन्याओं को अनेक क्षेत्रों में स्वतन्त्रता थी। वे अपना पति स्वयं चुन सकती थीं और अपना समय आध्यात्मिक ज्ञानार्जन में व्यतीत करती थीं।

बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद प्राप्त होता है। आत्मज्ञान के विषय में यह उच्चकोटि का संवाद है। इसी उपनिषद के अन्य अध्याय में याज्ञवल्क्य और ब्रह्मवादिनी गार्गी के संवाद का वर्णन आता है। स्वामीजी अपने शिष्यों से गार्गी के विषय में कहते हैं, ''सहस्रों वेदविद् ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने निडरतापूर्वक याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय में शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया था।''

उपनिषदों का अध्ययन करने पर हम याज्ञवल्क्य के भव्य व्यक्तित्व पर चकित हो जाते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक शास्त्रार्थों में वे न केवल अन्य ऋषियों से श्रेष्ठतर माने जाते हैं, अपितु भारत की धार्मिक और आध्यात्मिक भावधारा में भी उनका प्रभुत्व है। सहस्रों वर्षों के बाद भी याज्ञवल्क्य का प्रभाव अक्षुण्ण है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि उनका प्रभाव बढ़ रहा है, क्योंकि उनके द्वारा प्रदत्त सर्वोत्कृष्ट उपदेश जो पहले संस्कृत भाषा और कुछ विद्वानों तक ही सीमित थे, उनका अनेक भाषाओं में अनुवाद हो रहा है।

कभी-कभी याज्ञवल्क्य अपने ज्ञान के कारण हठी और महत्त्वाकांक्षी प्रतीत होते हैं। किन्तु प्राचीन ऋषि आधुनिक मानवों के समान दुर्बल, छिद्रान्वेषी, असन्तुष्ट, कायर और दोषदर्शी नहीं थे। आज हम कदाचित् ही इन 'पृथ्वी के देवताओं' की महानता समझ सकेंगे, जिनमें असाधारण शक्ति होते हुए भी असीम करुणा और प्रेम था। आधुनिक मनुष्यों को इन महान ऋषियों का अनुसरण करना चाहिए।

यद्यपि याज्ञवल्क्य की कुछ धार्मिक उपदेशों और अनुष्ठानों के प्रति असहमति थी, किन्तु इन आचारों के प्रति उनमें अश्रद्धा का भाव नहीं था। सत्य-प्राप्ति हेतु वे एक नवीन और सहज पथ प्रस्तुत करना चाहते थे। प्रत्येक युग में प्रत्येक महान आचार्य समाज की वर्तमान मन:स्थिति को ध्यान में रखकर उसे नवीन बल और प्रेरणा प्रदान करते हैं। स्वाभाविक है कि इससे कुछ सामाजिक रीतियाँ अप्रचलित हो जाती हैं, एकांगी और कट्टर विचारधारा लड़खड़ाकर गिर जाती है और इस प्रवृत्ति के कुछ लोग विरोध-प्रदर्शन करते हैं। किन्तु धर्म और संस्कृति की उत्तरजीविता और प्रचार के लिए ये परिवर्तन आवश्यक सिद्ध होते हैं और इतिहास अपने सिंहावलोकन द्वारा उनकी प्रशंसा करता है।

यद्यपि भारत में योगविद्या आर्य संस्कृति जितनी ही प्राचीन है, तथापि याज्ञवल्क्य को योग-सिद्धान्तों का प्रवर्तक माना जाता है। निश्चय ही इन महान ऋषि ने योग के दर्शन और उसकी साधनाओं में एक नई दिशा प्रदान की होगी।

श्वेताश्वतर उपनिषद के कुछ मन्त्रों में योग और उसके परिणामों का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीशंकराचार्य ने इन मन्त्रों के भाष्य में आध्यात्मिक साधना सम्बन्धी विस्तृत निर्देश दिए हैं। उन्होंने आरम्भ में यह भी कहा है कि ये उपदेश

याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मवादिनी गार्गी को दिए थे।

प्राचीन भारतीय आर्य-संस्कृति ने मुक्ति को सर्वोच्च महत्त्व दिया। प्रत्येक मनुष्य बाल्यकाल से ही इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता था। इसलिए जो ऋषि और सन्त इस आदर्श को पूर्णतया प्राप्त कर लेते थे, वे ही समाज का मार्गदर्शन करते थे और समस्त सामाजिक कार्य इसी उद्देश्य की ओर उन्मुख रहते थे। इनमें से कुछ महानतम पूजनीय ऋषियों ने तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ सामाजिक नियमों का निर्माण किया। उन्हें स्मृति कहा जाता है। इसके अन्तर्गत समस्त सामाजिक विषयों और सभी सदस्यों का समावेश होता है। उच्च गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों से लेकर लौकिक जगत के प्रत्येक विषय इसके अन्तर्गत आते हैं। हिन्दूधर्म के परम्परागत शास्त्रों में स्मृतिशास्त्र का स्थान आता है और उन्हें प्रामाणिक माना जाता है। स्मृतियों में भी मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति ने समाज को उत्कृष्ट रूप से प्रभावित किया है और आज भी अनेक क्षेत्रों में उनका प्रभाव है।

स्वामी विवेकानन्द की इच्छा थी कि प्रचलित सामाजिक नियम और आधुनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारत को पुन: प्राचीन आध्यात्मिक मार्ग पर परिचालित करने हेतु मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति को समयोपयोगी बनाकर फिर से लिखा जाए। निश्चय ही वे इनमें सकारात्मक परिवर्तन लाना चाहते थे। इससे भारत के लोग अध्यात्म और लौकिक दोनों क्षेत्रों में समान रूप से सक्रिय होंगे। आबालवृद्धवनिता सभी अत्यन्त धार्मिक होंगे और अपने कर्तव्यों का भी अत्यन्त क्षमतापूर्वक वहन करेंगे।

याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति के बाद की रचना है, किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। इस पर एक प्रसिद्ध मिताक्षरा टीका उपलब्ध है। इस स्मृति के दो पाठ उपलब्ध हैं और बंगाल के अलावा लगभग पूरे भारत में यह प्रचलित है। वर्णन आता है कि याज्ञवल्क्य का जीवनकाल भगवान बुद्ध के पूर्व का है। वे व्याकरणाचार्य कात्यायन के भी पूर्व माने जाते हैं। महाभारत में युधिष्ठर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में याज्ञवल्क्य पुरोहित थे। ऐसा वर्णन आता है कि याज्ञवल्क्य का नाम राजा जनक के काल में प्रसिद्ध हुआ। वे जनक के प्रधान पुरोहित थे। वास्तव में बृहदारण्यक उपनिषद का अधिक भाग जनक राजा के राजदरबार में कहा गया है और इसका दूसरा भाग याज्ञवल्क्य के नाम से है।

शतपथ ब्राह्मण की दो शाखाएँ हैं। बृहदारण्यक उपनिषद दोनों शाखाओं का उत्तर भाग है। इसके प्रणेता भी याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। शंकराचार्य जी ने इस पर उत्कृष्ट टीका लिखी है। अग्निपुराण में भी याज्ञवल्क्य का वर्णन आता है। अपनी समस्त सम्पत्ति दोनों पत्नियों को देकर वे ब्रह्म में लीन हो गए थे।

दुर्वासा

ऋषि-मुनियों के विषय में अनेक लोगों का एक आदर्श मापदण्ड रहता है। किन्तु कुछ ऋषियों का स्वाभाव उग्र एवं असामान्य रहता है। उनमें भी ऋषि दुर्वासा का नाम सबसे पहले मानसपटल पर आता है। उनकी क्रोध और शाप देने की प्रवृत्ति के बावजूद भी उनका यह क्रोध अन्तत: लोगों के लिए फलदायी हो जाता है। इस प्रकार की अरुचिकर भूमिका निभाना दुष्कर है, फिर भी अपने नाम के अनुसार दु:साध्य जीवन जीने वाले दुर्वासा का नाम जनमानस में आदर और स्नेपूर्वक लिया जाता है।

एकबार भगवान श्रीकृष्ण ने दुर्वासा का क्रोध बड़ी ही कुशलतापूर्वक शान्त किया था। दुर्वासा अपने शिष्यों के साथ दुर्योधन के यहाँ पहुँचे और उसका आतिथ्य स्वीकार किया। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उससे वर माँगने के लिए कहा। दुर्योधन ने कहा कि वे और उनके शिष्यगण वनवासी युधिष्ठिर के पास तब जाएँ, जब युधिष्ठिर इत्यादि अपना भोजन समाप्त कर चुके हों। स्वाभाविक है कि इस योजना के पीछे दुर्योधन की कुप्रवृत्ति थी। दुर्वासा मान गए और अपने शिष्यों के साथ युधिष्ठिर के पास गए। युधिष्ठिर ने उनका समुचित आदर-सत्कार किया। जब दुर्वासा ऋषि ने कहा कि वे और उनके शिष्यगण यहाँ भोजन करना चाहते हैं, तो युधिष्ठिर ने प्रसन्नचित्त होकर प्रार्थना की कि वे गंगा-स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर भोजन के लिए बैठ सकते हैं।

द्रौपदी असमंजस में पड़ गईं। उन्हें सूर्यदेवता से एक अक्षय-पात्र वरदान में प्राप्त हुआ था, जिसके द्वारा कितनी भी मात्रा में भोजन प्राप्त हो जाता था, किन्तु द्रौपदी के स्वयं भोजन करने के बाद वह रिक्त हो जाता था। द्रौपदी तब भोजन कर चुकी थीं। युधिष्ठिर को यह बात पता नहीं थी कि वे भोजन कर चुकी हैं और अक्षय-पात्र द्वारा अब कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता था। यदि दुर्वासा और उनके शिष्यों को भोजन नहीं कराया गया, तो पाण्डव न केवल पाप के भागी होंगे, अपितु दुर्वासा का कोपभाजन

होना पड़ेगा। द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे उन्हें इस महाविपत्ति से मुक्त कराएँ। भगवान प्रकट हुए और उसे अक्षय-पात्र लाने के लिए कहा। उस पात्र में एक किनारे थोड़ा-सा साग लगा हुआ था। उन्होंने वह खा लिया और तृप्ति का अनुभव किया। आश्चर्य की बात यह कि उसी समय दुर्वासा और उनके शिष्यगण को भी क्षुधा-तृप्ति का अनुभव हुआ।

श्रीकृष्ण ने सहदेव से कहा कि वे दुर्वासा और उनके शिष्यगण को भोजन के लिए आमन्त्रित करें। नदीतट पर दुर्वासा भी विस्मित हो गए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि द्रौपदी ने इतनी शीघ्रतापूर्वक इतने लोगों के लिए भोजन कैसे तैयार कर लिया। वे सोचने लगे कि युधिष्ठिर को जब पता लगेगा कि उनकी और उनके शिष्यों की क्षुधा-पूर्ण हो गई है, तो वे क्या सोचेंगे? उन्हें पता था कि श्रीकृष्ण पाण्डवों के सखा हैं और इस भय से कि कहीं कोई संकट उत्पन्न न हो जाए, वे चुपचाप वहाँ से चले गए।

दुर्वासा यदि आसानी से क्रोधित हो जाते थे, तो वे आसानी से प्रसन्न भी हो जाते थे। पाण्डवों का जन्म विभिन्न देवताओं के अंश से हुआ था। इसका कारण यह था कि दुर्वासा के आतिथ्य-ग्रहण के समय माता कुन्ती ने कन्या के रूप में उनकी यथोचित सेवा की थी। कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उन्हें दिव्य पुत्रों की प्राप्ति हेतु पाँच मन्त्र प्रदान किए थे।

दुर्वासा ऋषि के लिए क्रोध स्वाभाविक था। इसकी कथा इस प्रकार है । एकबार भगवान शिव त्रिपरासुर की सेना से युद्ध कर रहे थे और क्रोध में आकर उन्होंने एक बाण छोड़ा। उससे अनेक असुरों का वध हुआ। बाद में वह बाण एक शिशु में परिवर्तित होकर भगवान शिव की गोद में आ गया। वे शिशु दुर्वासा हुए। दुर्वासा के जन्म के विषय में एक अन्य प्रसिद्ध कथा का भी वर्णन प्राप्त होता है। एकबार शिव और ब्रह्मा में कलह हो गया। शिव ने जब क्रोध का स्वरूप धारण किया, तब सभी देवासुर भयाक्रान्त होकर पलायन करने लगे। पार्वती भी भयभीत हो गईं और कहा, 'दुर्वसं भवति मे' अर्थात्, 'मेरा जीवन यहाँ दुष्कर हो गया है'। शिव को अपने क्रोध का स्वरूप परिवर्तित करना पड़ा और संयोगवश उसी समय उन्हें ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया को पुत्र वरदान देना था। अनसूया के तीसरे पुत्र भगवान शिव के क्रोध-विग्रह दुर्वासा हुए।

एकबार दुर्वासा अपने उसी क्रोधी स्वभाव से द्वारका आए तथा श्रीकृष्ण और रानी रुक्मिणी का आतिथ्य ग्रहण किया। प्रतिदिन उनकी विचित्र माँगें रहती थीं, जिन्हें प्रसन्नता और तत्परतापूर्वक पूरा किया जाता था। एकबार उन्होंने श्रीकृष्ण और रानी रुक्मिणी को पायस बनाने के लिये कहा और उस पायस से श्रीकृष्ण को अपना शरीर लेपने के लिए कहा। भगवान ने भी अपने चरणों को छोड़ पूरा शरीर पायस से लेप दिया। बाद में उन्होंने श्रीकृष्ण और रानी रुक्मिणी को रथ जोतने के लिए कहा और उन्हें चाबुक से भी मारा। फिर उनमें अचानक परिवर्तन आया और दोनों को आशीर्वाद देकर वहाँ से चले गए। सर्वांग में पायस का लेप करने से श्रीकृष्ण का शरीर अभेद्य हो गया था। किन्तु उन्होंने पैरों में पायस का लेप नहीं किया था, इसलिए अन्तिम समय में जब वे विश्राम कर रहे थे, तभी प्रमादवश एक बाण उनके पैर में लगा और उनकी इहलीला समाप्त हुई।

श्रीकृष्ण के शरीर पर पायस का लेप करवाना दुर्वासा ऋषि के लिए कोई नई बात नहीं थी। उन्होंने यह कार्य स्वयं पर भी किया था। एकबार दुर्वासा शिलाद्वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले ऋषि मुद्गल के पास कुरुक्षेत्र गए और उनसे भोजन की याचना की। वे थोड़ा-सा अन्न खाते और बचा-खुचा शरीर पर लगा लेते। ऐसा अनेक दिनों तक चला और मुद्गल ऋषि को अनेक दिनों तक भूखा रहना पड़ा। किन्तु वे किंचित् भी विचलित नहीं हुए। दुर्वासा उनकी धैर्यशीलता और धर्मपरायणता पर प्रसन्न हुए और उनको आशीर्वाद दिया।

दुर्वासा ऋषि एकबार एक राजयज्ञ में पुरोहित थे। किन्तु यज्ञ अतिदीर्घ होने से यज्ञधूम के कारण पुरोहितों की आँखों में व्यथा होने लगी और वे यज्ञ के पूर्ण होने के पहले ही चले गए। अपूर्ण यज्ञ को पूर्ण करने का उपाय खोजने हेतु राजा श्वेतकी ने हिमालय में तपस्या की। भगवान शिव राजा की तपस्या से प्रसन्न हुए और दुर्वासा को यज्ञ पूर्ण करने के लिए कहा। इसे पूर्ण करने में उन्हें द्वादश वर्ष लगे थे।

ऋषिगण स्वभाव से दयालु एवं परोपकारी होते हैं। यह बात महत्त्व नहीं रखती कि पुराणों में महर्षि दुर्वासा की दयालुता और उदारता सहज प्रकाशित नहीं होती। किन्तु उनके विषय में अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि वे अपने क्रोधी स्वभाव के परे जाने में भी सक्षम थे।

(समाप्त)

बल

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

उच्च वस्तु की प्राप्ति के लिए सदैव निम्न वस्तु का त्याग करना होता है। कभी भी निम्न वस्तु के लिए उच्च वस्तु का त्याग नहीं किया जाता। कठिन कार्य की सिद्धि के लिए सुख और तुच्छ वस्तुओं का त्याग करना होता है और हम श्रेष्ठता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार त्याग से हमें विश्राम नहीं प्राप्त होता, बल्कि नए उत्तरदायित्व हमारे सामने आते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव की प्रायश्चित्त करने वाले विषधर साँप की एक सुन्दर कथा है। उस कथा के एक वाक्य में ही आत्म-गौरव और बल की समस्त शिक्षा निहित है – "फुफकारो, किन्तु डसो मत!" – जीवन के अनेक अवसरों पर यह शिक्षा हमें समस्याओं का समाधान देती है। ऐसे कितने लोग हैं, जिनके साथ हमारा उत्कृष्ट सम्बन्ध केवल इसलिए होता है कि वे जानते हैं कि थोड़ा-सा भी मनमुटाव होने से हमारी मधुरता चली जाती है और हम अपने व्यवहार में भयप्रद, कठोर और शत्रु हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो विषधर साँप अपना फन उठा लेता है।

किन्तु हम यह समझने की भूल न करें कि प्रत्येक छोटी-मोटी बात पर चिढ़ना और खीजना भी फन उठाने के समान है। एक विषधर साँप में क्रोध की विकसित शक्ति, संसार में अत्यन्त भयंकर शस्त्र का उपयोग करने में उसकी परिपक्वता, निर्णायक क्षणों में उसकी तात्कालिक सूझबूझ और सर्वोपरि ये सब शक्तियाँ यथार्थत: उसके नियन्त्रण में रहती हैं। विषधर साँप की यही शक्ति उसे दुर्जेय बना देती है। कायर और मूर्खों के लिए फन उठाने की बात कहना वृथा है। हमारी इस कथा-नायक के अनुताप के पीछे उसका अनेक वर्षों का विकास है, जिसमें उसकी चेष्टाओं का प्रयोजन केवल एक विषधर साँप बनना था। यह शक्ति अर्जित करने के बाद यथार्थ शक्ति उसका संयम करने में है। प्रत्येक व्यक्ति को इसी प्रकार विषधर साँप के समान शक्ति अर्जित करनी है। हमारी धार्मिक शिक्षा दुर्बल बनने की नहीं है। हम ऐसे जीएँ कि हमारी उपस्थिति में कोई अनुचित करने की धृष्टता न करे। यदि नाग की यह (फुफकारने की) शक्ति कोई नहीं समझता है, तो डसना उचित हो सकता है। किन्तु इस प्रकार की हिंसा के पीछे प्रतिशोध का भाव न होकर सदैव चेतावनी का भाव होना चाहिए। हमारी शक्ति की तुलना में तो वह केवल फुफकारना मात्र होगा।
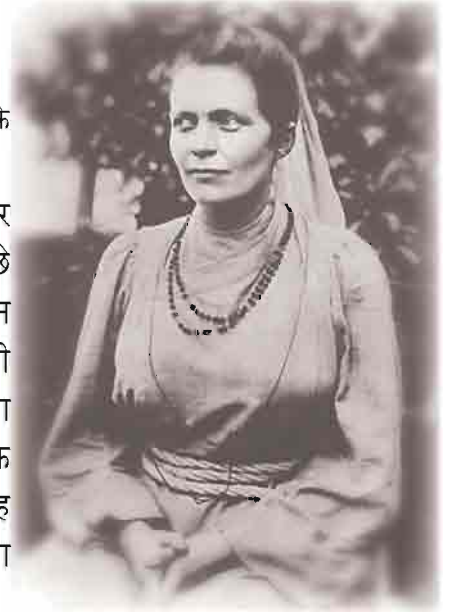
इन सभी बातों को हम बच्चों को दण्ड देने के परिप्रेक्ष्य में आसानी से समझ सकते हैं। जिन माता-पिता ने अपने पुत्र को भलीभाँति अनुशासनात्मक दण्ड दिया है, उनके बारे में हम क्या सोचेंगे? यह स्पष्ट है कि उनके इस कार्य के पीछे उनकी थोड़ी-सी अनासक्ति और उदासीनता होगी, अन्यथा उनका यह दण्ड देना प्रभावकारी नहीं होगा। दोषी व्यक्ति को क्रोधपूर्वक दण्ड देने से केवल उसकी घृणा ही बढ़ती है। यदि आदर्श से च्युत व्यक्ति को गम्भीरता और दुखपूर्वक दण्ड दिया जाए, तो वह उस व्यक्ति को व्यथित करने के साथ-साथ परिवर्तित भी करता है।

बल का उचित उपयोग केवल वही व्यक्ति कर सकता है, जो उसके पीछे की भावना को जानता है। बल का हमें केवल उपयोग मात्र करना है, उसकी बाढ़ में स्वयं को बहने नहीं देना है। बल उन घोड़ों के समान है, जो एक कुशल सारथि के नेतृत्व में सुनियन्त्रित है। संयम शक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति है, किन्तु संयम के लिए पहले शक्ति का होना आवश्यक है। बलहीन व्यक्ति का कोई आदर नहीं करता और एक विवेकहीन नरपिशाच व्यक्ति का भी कोई आदर नहीं करता, क्योंकि वह अपने क्रोध रूपी संवेगों का दास है। हमारा धर्म शक्ति का है। हमारी विचारधारा कहती है कि मनुष्य का प्रथम कर्तव्य बलवान होना है। यदि हम ऐसा जीवन-यापन करें कि हमारी उपस्थिति मात्र से धर्म का प्रवर्तन हो और दुर्बलता से रक्षा हो, तो यह कोई कम आत्म-उपलब्धि नहीं होगी। ○○○

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२१)

स्वामी भास्करानन्द

अनुवाद : ब्र. चिदात्मचैतन्य, नागपुर

ब्रह्मज्ञ पुरुष स्वाभाविक रूप से ईश्वर में लीन रहते हैं। उन्हें अपने मन को साधारण सांसारिक स्तर पर लाना बहुत कठिन होता है। किन्तु साधन-भजनहीन लोगों पर द्रवित होकर करुणावश वे अपने मन को सामान्य धरातल पर लाते हैं। श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्य इसके ज्वलन्त उदाहरण थे। स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज कुछ समय अपने मन को साधारण स्तर में लाने के लिए साधुओं के साथ बैठकर ताश इत्यादि खेलते थे। कुछ लोग विनोद भी करते थे। स्वामी शिवस्वरूपानन्द जी ने बेलूड़ मठ में स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के साथ घटी घटना का प्रत्यक्ष वर्णन किया है।

बेलूड़ मठ में साधुवृन्द साधारणत: दो पंगतों में बैठकर भोजन करते हैं। अधिकांश साधु प्राय: प्रथम पंगत में ही भोजन करते हैं। भोजन परोसने वाले साधु दूसरी पंगत में बैठकर भोजन करते हैं। जब स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज (१८६४-१९३७) सारगाँछी आश्रम से बेलूड़ मठ आये; तब यह घटना घटी थी।

एक दिन स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने चार-पाँच साधुओं को अपने साथ दूसरी पंगत में रात्रि-भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया। उनमें स्वामी शिवस्वरूपानन्द भी थे। जब साधुवृन्द भोजन-कक्ष में पहुँचे, तब स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने घोषणा की कि उन्होंने इंग्लैण्ड के किंग जॉर्ज-पंचम (King George, the Fifth of England) का जन्मदिन मनाने का निश्चय किया है। इसके लिए विशेष भोज का आयोजन किया गया है। भोजन में प्रत्येक दिन के अतिरिक्त दो-तीन अधिक व्यंजन थे।

स्वामी अखण्डानन्द

स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज को इसकी कोई धारणा नहीं थी कि किंग जोर्ज-पंचम का जन्म कब हुआ था। इसके साथ ही, उस समय भारतीय जनता ब्रिटिश शासन से मुक्त होने के लिए संघर्षरत थी और उनका ब्रिटिश राजा के प्रति कोई प्रेम नहीं था।

भोजन समाप्त होने के बाद स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने स्वामी शिवस्वरूपानन्द से कहा, "कहो, किंग जोर्ज-पंचम की जय।" लेकिन शिवस्वरूपानन्दजी स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज की इस आज्ञा को नहीं मानकर 'श्रीरामकृष्ण देव की जय !' कहकर शीघ्र उठकर चले गये। यह देखकर सभी हँसने लगे।

रामकृष्ण संघ में एक स्वामी योगीश्वरानन्द जी महाराज थे, जो 'उप्पू दा' के नाम से परिचित थे। वे स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के शिष्य थे। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय बेलूड़ मठ में ही व्यतीत किया था। बेलूड़ मठ के व्यवस्थापक स्वामी अभयानन्द जी महाराज (१८८९-१९८९) ने स्वामी योगीश्वरानन्द के साथ एक विनोद किया। वर्षा ऋतु थी। इस ऋतु में, हजारों छोटे-मोटे मेढ़क बेलूड़ मठ के लॉन में चारों ओर रेंगते रहते हैं। बेलूड़ मठ गंगा नदी के तट पर अवस्थित है। ये मेढ़क नदी से आते हैं।

स्वामी अभयानन्द जी महाराज ने रसगुल्ला का एक खाली डिब्बा मँगवाया और किसी को उसमें छोटे-छोटे मेढ़कों को भरने के लिए कहा। जब योगीश्वरानन्द जी महाराज घूमने के लिए गये, तब मेढ़कों से भरा डिब्बा उनके बिस्तर पर रखवा दिया। योगीश्वरानन्द जैसे ही घूमकर वापस आये, स्वामी अभयानन्द जी ने उनसे कहा, "अपने कमरे में जाओ। हमने तुम्हारे लिए कुछ सामान रखा है।"

स्वामी अभयानन्द

स्वामी योगीश्वरानन्द जी महाराज अपने कमरे में गये। वे बिस्तर पर रसगुल्लों से भरा डब्बा देखकर बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन वे तब आश्चर्यचकित हो गये, जब उनके डिब्बा खोलते ही बन्द मेढ़क उन पर कूद पड़े।

एक दूसरी घटना है। वाराणसी सेवाश्रम में राजेन महाराज नाम के एक संन्यासी थे। उनके सिर पर बिल्कुल भी बाल नहीं थे। उनको चिढ़ाने के लिए इन्द्रेश्वर नाम के एक संन्यासी ने उनसे बिना पूछे उनके लिए बाल डाई (रंग) करने की बोतल पार्सल द्वारा मँगवाने का आदेश भेजा। कम्पनी ने पार्सल को C.O.D. के द्वारा भेजा; जिसका भुगतान प्राप्त

होने के बाद करना था।

जब पार्सल पहुँचा तो आश्रम के खजांची महाराज ने पार्सल में क्या है, यह देखे बिना ही डाकिया को रुपये दे दिए और इसके लिए राजेन महाराज पर व्यय लगा दिया। राजेन महाराज पार्सल देखकर भौंचक्का रह गये, क्योंकि उन्होंने पार्सल के लिए कभी भी आदेश नहीं दिया था। फिर भी उन्होंने खजांची महाराज को रुपये दे दिये। राजेन महाराज के पास कुछ रुपये थे । उन्होंने वे रुपये खजांची महाराज को दे दिये।

जैसे ही उन्होंने पार्सल खोला, वे देखकर समझ गये कि किसी ने उनके साथ विनोद किया है। राजेन महाराज, जिनके सिर पर एक भी बाल नहीं था, उनके लिए 'हेयर डाई की बोतल का आदेश देने' की इस बात पर सब साधु हँसने लगे। लेकिन स्वाभाविक है कि राजेन महाराज हँस नहीं सके।

अब मैं आपको राजेन महाराज से सम्बन्धित दूसरी विनोदपूर्ण घटना बताता हूँ। यह घटना भी वाराणसी सेवाश्रम की है।

लगभग सत्तर वर्ष पूर्व बेलूड़ मठ की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। अर्थाभाव के कारण साधुओं को साधारण भोजन मिलता था। उन दिनों बेलूड़ मठ और उसके आस-पास के क्षेत्रों में मच्छरों का आतंक था। साधुओं को पीने के लिये केवल गंगा नदी का बहुत अधिक गंदा और प्रदूषित जल ही मिलता था। इसके कारण साधुवृन्द बारम्बार पेचिश, मलेरिया इत्यादि से पीड़ित रहते थे और साधुओं की चिकित्सा की भी कोई सुविधा नहीं थी।

तब और अभी भी, रामकृष्ण संघ की यह नीति है कि उसके सभी केन्द्र आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर रहें। अत: कुछ केन्द्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और कुछ नहीं । वाराणसी सेवाश्रम का जीवन-स्तर बेलूड़ मठ की अपेक्षा अधिक अच्छा था। इस आश्रम में अस्पताल था और साधुओं को सहज चिकित्सा सुविधा प्राप्त थी।

राजेन महाराज वाराणसी सेवाश्रम में कई वर्षों से रहते थे। वे पवित्र काशी नगरी से बहुत प्रेम करते थे। मुख्यत: काशी-प्रेम और आंशिक रूप से बेलूड़ मठ के तप:पूर्ण जीवन के कारण वहाँ स्थानान्तरण के नाम से ही वे डर जाते थे। महाराज काशी कभी नहीं छोड़ने की इच्छा प्राय: व्यक्त करते थे। उनकी काशी कभी नहीं छोड़ने की इच्छा को लेकर कुछ साधुओं ने उनसे विनोद करने की सोची।

उन्होंने एक भक्त को गुप्त रूप से अपनी टोली में लिया । वे भक्त अन्यत्र कार्यपालन अधिकारी थे । उनके यहाँ चपरासी भी थे। साधुओं ने डाक-घर से एक टेलीग्राफ फार्म मँगवाया और उसमें बेलूड़ मठ प्रधान कार्यालय के नाम से बनावटी तार वाराणसी सेवाश्रम के अध्यक्ष के नाम पर भेज दिया। तार में लिखा हुआ था, ''राजेन को तुरन्त बेलूड़ मठ भेज दो।'' चपरासी ने डाकिया का छद्मवेश बनाकर वाराणसी सेवाश्रम के अध्यक्ष स्वामी असीमानन्द जी महाराज को तार दे दिया।

तार पाने के बाद असीमानन्द जी महाराज ने राजेन महाराज को बुलाकर कहा – ''तुम्हें बेलूड़ मठ जाना होगा।'' इस आदेश से राजेन महाराज बहुत भयभीत हो गये और अश्रुपूर्ण आँखों से उन्होंने असीमानन्द जी महाराज से कहा, ''मुझे क्यों? मैंने क्या गलती की है? वे लोग मेरा स्थानान्तरण बेलूड़ मठ क्यों कर रहे हैं?'' राजेन महाराज की इस दुखद अवस्था को देखकर, जिन संन्यासियों ने इस विनोद की योजना बनाई थी, उनलोगों को लगा कि घटना विनोद की सीमा पार कर चुकी है। उन सबने स्वामी असीमानन्द जी महाराज के पास जाकर अपनी इस विनोदपूर्ण योजना को स्पष्ट रूप से बता दिया।

स्वामी असीमानन्द जी महाराज इस घटना से बहुत हँसे। तदनन्तर उन्होंने राजेन महाराज को बुलाकर कहा कि उनको बेलूड़ मठ जाना नहीं होगा। इस सूचना से राजेन महाराज निश्चिन्त और प्रफुल्लित हो गए। **(क्रमश:)**

तू ही तू

पुरुषोत्तम नेमा, गोटेगाँव

पास तू दूर तू, नीचे तू ऊपर तू,
एक तू अनेक तू, मत्स्य कच्छप शूकर तू ।
बुद्ध मोहम्मद ईसा तू, राम कृष्ण, वीर तू,
सत्य तू साईं तू, शाह तू फकीर तू ।।

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

यद्दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवेत् ।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ।।५५।।

पदच्छेद – *यत् दृष्ट्वा न अपरम् दृश्यम् यत् भूत्वा न पुनः भवेत् यत् ज्ञात्वा न अपरम् ज्ञेयम् तत् ब्रह्म इति अवधारयेत् ।*

अन्वयार्थ – **तत्** उसी को **ब्रह्म इति** ब्रह्म **अवधारयेत्** समझो, **यत्** जिसे **दृष्ट्वा** देखने के बाद **अपरं** कुछ अन्य **दृश्यम्** देखने योग्य **न** नहीं रहता, **यत्** जो **भूत्वा** होने के बाद **पुनः** दुबारा **भवेत्** जन्म **न** नहीं होता, (और) **यत्** जिसे **ज्ञात्वा** जान लेने के बाद **अपरम्** अन्य कुछ भी **ज्ञेयम्** जानने योग्य **न** नहीं रहता ।

श्लोकार्थ – उसी को ब्रह्म समझो, जिसे देखने के बाद कुछ अन्य देखने योग्य नहीं रहता, जो होने के बाद दुबारा जन्म नहीं होता और जिसे जान लेने के बाद अन्य कुछ भी जानने योग्य नहीं रहता ।

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ।।५६।।

पदच्छेद – *तिर्यक् ऊर्ध्वम् अधः पूर्णम् सत्-चित्-आनन्दम् अद्वयम् अनन्तम् नित्यम् एकम् यत् तत् ब्रह्म इति अवधारयेत् ।*

अन्वयार्थ – **तत्** उसी को **ब्रह्म इति** ब्रह्म **अवधारयेत्** समझो, **यत्** जो **तिर्यक्** सामने **ऊर्ध्वम्** ऊपर **अधः** नीचे (हर तरफ से) **पूर्णम्** पूर्ण है, (जो) **सत्-चित्-आनन्दम्** सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है, (और) **एकम्** एक, **अद्वयम्** अद्वितीय, **अनन्तम्** अनन्त (और) **नित्यम्** नित्य है ।

श्लोकार्थ – उसी को ब्रह्म समझो; जो सामने, ऊपर, नीचे (हर ओर से) पूर्ण है; (जो) सत्-चिद्-आनन्द -स्वरूप है; और जो एक, अद्वितीय, अनन्त एवं नित्य है ।

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽद्वयम् ।
अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ।।५७।।

पदच्छेद – *अतत्-व्यावृत्ति-रूपेण वेदान्तैः लक्ष्यते अद्वयम् अखण्ड-आनन्दम् एकम् यत् तत् ब्रह्म इति अवधारयेत् ।*

अन्वयार्थ – **वेदान्तैः** वेदान्त द्वारा **अतत्-व्यावृत्ति-रूपेण** निषेध लक्षणा से **यत्** जिस **एकम्** एक, **अद्वयम्** अद्वितीय, **अखण्ड-** अखण्ड, **आनन्दम्** आनन्द-स्वरूप को **लक्ष्यते** इंगित किया जाता है, **तत्** उसी को **ब्रह्म इति** ब्रह्म **अवधारयेत्** समझो ।

श्लोकार्थ – वेदान्त द्वारा निषेध लक्षणा से (नेति, नेति द्वारा) जिस एक, अद्वितीय, अखण्ड, आनन्द-स्वरूप को इंगित किया जाता है, तत् उसी को ब्रह्म समझो ।

अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ।।५८।।

पदच्छेद – *अखण्ड-आनन्द-रूपस्य तस्य आनन्द-लव-आश्रिताः ब्रह्म-आद्याः तारतम्येन भवन्ति आनन्दिनः अखिलाः ।*

अन्वयार्थ – (ब्रह्म) **अखण्ड-** अखण्ड **आनन्द-** आनन्द **रूपस्य** स्वरूप है । **ब्रह्मा-आद्याः** ब्रह्मा आदि **अखिलाः** सभी (देवता) **तारतम्येन** अपने तारतम्य के क्रम से (कम या अधिक मात्रा में) **तस्य** उसी के **आनन्द-** आनन्द के **लव-** कण मात्र पर **आश्रिताः** निर्भर हैं (और) उसे पाकर **आनन्दिनः** आनन्दित **भवन्ति** होते हैं ।

श्लोकार्थ – (ब्रह्म) अखण्ड आनन्द स्वरूप है । ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी (देवता) अपने तारतम्य के क्रम से (कम या अधिक मात्रा में) उसी के आनन्द के कण मात्र पर निर्भर हैं (और) उसे पाकर आनन्दित होते हैं ।

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ।।५९।।

पदच्छेद – *तत् युक्तम् अखिलम् वस्तु व्यवहारः तत् अन्वितः तस्मात् सर्वगतम् ब्रह्म क्षीरे सर्पिः इव अखिले ।*

अन्वयार्थ – **अखिलम्** सभी **वस्तु** वस्तुएँ **तत्** उसी से **अन्वितः** युत्त हैं, **व्यवहारः** (सारे) कार्य **तत्** उसी पर **अन्वितः** निर्भर हैं, **तस्मात्** अतः **अखिले** पूरे **क्षीरे** दूध में **सर्पिः** मक्खन के **इव** समान **ब्रह्म** ब्रह्म **सर्वगतम्** सर्वव्यापी है ।

श्लोकार्थ – सभी वस्तुएँ उसी (ब्रह्म) से युक्त हैं, सारे कार्य उसी पर आश्रित हैं, अतः पूरे दूध में मक्खन के समान ब्रह्म सर्वव्यापी है ।

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (१३)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

हमारे ऋषि-मुनियों ने अर्थोपार्जन या काम की भी अवहेलना नहीं की है। सब का श्रेष्ठ उपयोग किस प्रकार करना है, यह बताया है जिससे आत्मकल्याण के साथ-साथ जगत का भी हित हो। जब तक भारत के लोगों के जीवन में चारों का समन्वय था, तब तक भारत देश प्रत्येक क्षेत्र में महान था। परन्तु कालक्रम में उसमें परिवर्तन होता गया। हजारों श्रेष्ठ मनुष्य संन्यास की दीक्षा लेकर भिक्षु और मुनि बनने लगे। इसके परिणामस्वरूप उच्च स्तर का बुद्धिप्रधान अंग समाज में रहने के बदले वनों, जंगलों और अरण्यों में चला गया। समाज दुर्बल बन गया, सम्पत्ति और शक्तिविहीन हो गया। इसके कारण बाहर के आक्रमणों, शक-हूण-मुस्लिम और ईसाई के सामने टक्कर नहीं ले सका और भारत देश परतन्त्र हो गया।

"जीवन में केवल दुख-ही-दुख है, इसलिए जीवन को त्याग दो और जंगल में जाकर मोक्ष के लिये आराधना करो तथा इस जीवन से मुक्ति प्राप्त कर लो।" यह निषेधात्मक मार्ग है। ऐसे निषेधात्मक व्यवहार के कारण भारत दरिद्र बन गया। इसके विपरीत दूसरा मार्ग है। शरीर धारण किया है, तो आनन्द कर लो, कल का किसे पता है? जितना भोगना है, उतना भोग लो।" यह भोगवाद है। चार्वाक का मत है – **"यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत्।"** दूसरे जन्म का क्या पता ! इसलिए इसी जन्म में भोग लो, कर्ज लेकर भी घी पियो !" अर्थात् पैसे न हो, तो उधार लेकर भी मौज-मस्ती कर लो। इस भोगवाद ने भी समाज को मूल्यहीन बना दिया। इस त्यागवाद और भोगवाद के दो अन्तिम छोरों को अपनाना भारत के पतन का महत्त्वपूर्ण कारण है।

आज भी भारत की कुल जनसंख्या के लगभग २९ प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं। उनकी प्राथमिक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होती हैं। लाखों लोगों को दोनों समय भरपेट भोजन नहीं मिलता है। जबकि दूसरी ओर धनिकों को धन कहाँ खर्च करें, इसकी समस्या है। जब तक इस परिस्थिति से बाहर नहीं निकलते, तब तक किसी भी समाज या देश में सुख-शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती है। आज से एक-सौ बीस वर्ष पहले स्वामी विवेकानन्द ने जो कहा था, वह आज भी प्रासंगिक है। एक पत्र में उन्होंने लिखा, "इन सब विचारों के कारण विशेषकर देश की गरीबी और अज्ञानता के विचारों के कारण सारी रात मुझे नींद नहीं आई।" कन्याकुमारी के समुद्र में एक शिला पर बैठकर उन्होंने एक योजना बनाई – "हम इतने सारे संन्यासी भ्रमण करते रहते हैं और लोगों को धर्मोपदेश देते रहते हैं, यह निरा पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव नहीं कहते हैं कि भूखे पेट धर्म नहीं हो सकता। दरिद्र लोग पशुवत् जीवन जी रहे हैं, उसका कारण केवल अज्ञान है। हम युगों से उनका शोषण करते आये हैं, उन्हें पैरों के नीचे कुचलते आये हैं।" इस दरिद्रता को दूर करने के लिये धनिकों को त्याग और सेवा का आदर्श चाहिए। यह बात स्वामीजी ने प्रेमपूर्वक बतायी है। भारतीयों की आत्मा को झकझोरते हुए उन्होंने कहा था, "हे भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारी नारियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। मत भूलना कि सर्वत्यागी उमानाथ शंकर तुम्हारे भगवान हैं। मत भूलना की तुम्हारा विवाह, तुम्हारा गृहस्थाश्रम, तुम्हारा धन, तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख के लिये, तुम्हारे व्यक्तिगत सुख, भोग-विलास के लिए नहीं है। मत भूलना कि तुम जन्म से माता के लिये वेदी पर बलिदान के लिये रखे गये हो। मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है। मत भूलना की नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। हे वीर ! साहस का आश्रय लो, गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। बोलो, कि अज्ञानी भारतवासी, निर्धन भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं,

तुम भी कटिमात्र में वस्त्र लपेट कर गर्व से पुकार कर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरा पालना है, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्धक्य की वाराणसी है। भाई! बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है। रात-दिन कहते रहो –'हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो, माँ मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बना दो।''

स्वामी विवेकानन्द ने दरिद्र-नारायण की सेवा करने का अनुरोध किया था, फिर महात्मा गाँधी ने सम्पत्ति द्वारा सेवा करने के लिए, उस समय के बड़े-बड़े धनवान व्यक्तियों, जैसे बिरला, बजाज आदि से अनुरोध किया और ट्रस्टीशिप मेनेजमेन्ट के सिद्धान्त को व्यवहार में फिर से लागू किया।

आज विश्व के सबसे अधिक धनाढ्यों में एक, माइक्रो-सॉफ्ट कम्पनी के चेयरमैन बिल गेट्स ने अपनी सम्पत्ति गरीबों के कल्याण के लिए दान में देने की घोषणा की है। इस दान की प्रेरणा उन्हें भारत में आने के बाद हुई। वे प्रतिदिन सोने से पहले स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक पढ़ते हैं, यह उन्होंने समाचार पत्रों में बताया है। सम्पत्ति द्वारा जनकल्याण की भावना का उदय इन पुस्तकों के पठन से उन्हें हुआ, ऐसा कह सकते हैं।

साम्यवाद पर आधारित अर्थतन्त्र कितना खोखला है और उससे सामान्य जनता कितनी दुखी होती है, यह रूस की निष्फलता से सिद्ध हो गया है। दूसरी ओर पूंजीवाद पर आधारित मेनेजमेंट भी निष्फल होता जा रहा है। पिछले दिनों मेनेजमेन्ट के अमेरिका के सुविख्यात् सलाहकार पीटर ड्रकर ने एक लेख लिखा, ''क्या पूंजीवाद का अन्त होगा?'' पूंजीवाद के राक्षस ने आजकल अच्छे खासे उद्योगों को मंदी के गर्त में धकेल दिया है। विकसित देशों को भी बेकारी का प्रश्न सता रहा है, इसलिए अब विश्व के देश उद्योगों की समस्या का स्थायी समाधान करने के लिए भारतीय प्रबन्धन की ओर मुड़ रहे हैं। १ अगस्त, १९९९ के टाईम्स ऑफ इंडिया में एक लेख आया था, जिसमें लिखा था कि समग्र विश्व में वैदिक प्रबन्धन एक नया मन्त्र बन गया है। प्रबन्धन में भारतीय प्रबन्धन को 'फोर्थ वेव' कहा जाता है। जिसमें प्रथम लहर थी ब्रिटिश मेनेजमेन्ट की, दूसरी लहर थी अमेरिकन मेनेजमेन्ट की, तीसरी लहर आयी जापानी मेनेजमेन्ट की और अन्त में चौथी लहर आयी है भारतीय मेनेजमेन्ट की, वैदिक मेनेजमेन्ट की। शेष सभी प्रबन्धनों में पैसा तो मिलता है, पर शान्ति नहीं मिलती है। अब लोग ऐसी कार्य प्रणाली चाहते हैं, जिसमें शान्ति और समृद्धि दोनों मिले और यह केवल भारतीय प्रबन्धन में ही मिलती है। इसलिये अमेरिका की कई बड़ी कम्पनियाँ अब भारतीय मेनेजमेन्ट की ओर बढ़ रही हैं।

हमारा प्राचीन आदर्श है, त्याग करके भोग करो, इसमें उपभोग का निषेध नहीं है, अपितु साथ-साथ अन्य के लिये त्याग करने का भी समावेश है। यह आध्यात्मिकता की नींव पर बनाया गया ट्रस्टीशीप मेनेजमेन्ट का सिद्धान्त अब विश्व के देशों को अपनाना आवश्यक हो गया है। क्योंकि यही एकमात्र सिद्धान्त ऐसा है, जो सर्वव्यापी समृद्धि का सिद्धान्त है, जिमसें मालिक और मजदूर के बीच कोई भेद नहीं है। इसलिये उत्पादन की कोई समस्या पैदा नहीं होती है। धन के असमान वितरण से उत्पन्न समस्याएँ खड़ी नहीं होती हैं। इसलिये उत्पादन में वृद्धि होती रहती है, सबकी समृद्धि बढ़ती रहती है। इस समृद्धि में केवल मालिकों का हिस्सा ही नहीं होना चाहिये, बल्कि समग्र कर्मचारियों और सम्पूर्ण समाज का हिस्सा होना चाहिये। ऐसे समाज में कोई भूखा, दुखी नहीं हो सकता। 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना साकार होनी चाहिये, तब वह सच्चा समाजवाद होगा। जब इसकी पूर्ण स्थापना होगी, तब भारत के ऋषियों का दर्शन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' साकार होगा। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४१७ का शेष भाग

ही ब्रह्म की शक्ति भी सत्य है। यह शक्ति आ गई। ज्योंही शक्ति आ गई, तो ब्रह्म को तकनीकी रूप से ब्रह्म नहीं कहा जा सकता। उसको ईश्वर कहते हैं। जिसको श्रीरामकृष्ण ने माँ कहकर पुकारा, इसी शक्ति को प्रकृति कहा गया है। ईश्वर इसी प्रकृति का सहारा लेकर संसार के भिन्न-भिन्न लोकों को उत्पन्न करता है। यह जो प्रकृति है, जड़ात्मक है। इसे ही अव्यक्त कहा गया। परन्तु इस अव्यक्त से परे एक सनातन अव्यक्त है। वह साक्षात् ब्रह्म है। भगवान कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, वही मैं हूँ। वह जो सनातन अव्यक्त है, वह चैतन्यात्मक है, वही मेरा अपना स्वरूप है, सर्वभूतों के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होता है। **(क्रमश:)**

प्रार्थना सबके लिये मंगलमयी होती है

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

प्रार्थना की बहुत बड़ी महिमा है। ऋग्वेद जो हमारे देश का सबसे प्राचीन ग्रंथ है, उसमें सबसे पहले भगवान की प्रार्थना की गयी। सम्पूर्ण ऋग्वेद अनेक देवताओं की प्रार्थनाओं से भरा हुआ है। अगर आप देखें, तो ऋग्वेद प्रार्थना से भरा हुआ है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड से भरा हुआ है, सामवेद संगीत से भरा हुआ है और अर्थववेद लौकिक विद्याओं तथा विज्ञान से भरा हुआ है। इनमें पहला जो ऋग्वेद है, उसमें प्रार्थनाएँ हैं। यदि व्यक्ति प्रार्थना नहीं करेगा, तो उसका हृदय मरुस्थल की तरह नीरस बना रहेगा। प्रार्थना में ईश्वर के साथ सम्बन्ध जुड़ता है, भगवान के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। उससे परमात्मा का रस मानव के जीवन में उतरता है। प्रार्थना रस-प्रवाहिनी और शक्ति है, जिससे मानव का हृदय प्रसन्न होता है। मानव की बुद्धि शुद्ध होती है। मानव का आचरण शुद्ध होता है। उसके जीवन में पवित्रता, दिव्यता आती है। उसे भगवान की कृपा प्राप्त होती है।

प्रार्थना को ऐसे मानना चाहिए, जैसे आप सबेरे उठकर अपने घर में झाड़ू लगाते हैं, तो घर का मैल, कूड़ा-कचरा, सब बाहर चला जाता है। वैसे ही प्रार्थना हमारे हृदय रूपी भवन में झाड़ू का काम करती है। वह हमारे सारे पापों को बाहर कर देती है और मन को शुद्ध बना देती है।

प्रार्थना तो सूर्य के समान है, जिस पर हर आदमी का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी भाषा, अपने-अपने धर्म के अनुसार प्रार्थना करते हुए अपने हृदय के अँधेरे में प्रार्थना के सूर्य को उतारता है और उससे उसके जीवन का अन्धकार दूर हो जाता है। प्रार्थना एक सीढ़ी है, जिसके ऊपर चढ़कर मानव स्वर्ग तक पहुँच जाता है। प्रार्थना दिव्य तत्त्व है।

जब हम अपनी आँखें बन्द कर भगवान को देखने का प्रयत्न करते हैं, तब हमें दिखता है कि वे भगवान इतनी दूर नहीं हैं, जितना हम मानते हैं। प्रार्थना परमात्मा रूपी माता के सामने रुदन है। यदि हम प्रेम से भगवान के लिए रोयें, तो वे सब कुछ छोड़कर हमारी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। भगवान ने स्वयं कहा है कि 'योगक्षेमं वहाम्यहम्', हे अर्जुन, मैं योग-क्षेम का वहन करता हूँ। अपने भक्तों के लिये यह भगवान की प्रतिज्ञा है। भगवान अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं। हमें उनसे हृदय से निष्कपट होकर प्रार्थना करनी है। व्यक्ति के जीवन में नित्य प्रार्थना होनी चाहिए। प्रार्थना जीवन की सार्थकता है। प्रार्थना का झण्डा लेकर विजय के मार्ग पर चलिए, भगवान आपके साथ हैं। ईश्वर आपका कल्याण करेगें। सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना भगवान तुरन्त सुनते हैं। प्रार्थना सबके लिये सरल और मंगलमयी होती है।

कभी भी भक्त को अपने आपको दुर्बल नहीं समझना चाहिये। कोई आश्रम में रहकर निष्काम कर्म करता है। कोई घर में रहकर साधन-भजन करता है। किसी भी प्रकार से भगवान से जुड़ना महत्त्वपूर्ण है। आप भगवान को अपना समझकर अपने को बलवान समझें। क्योंकि भगवान अतुल बलशाली हैं। हम भी भगवान से जुड़कर शक्तिशाली हो जाते हैं।

हमें पुरुषार्थ स्वयं करना होगा। हमसे जो त्रुटियाँ हो चुकी हैं, उसका बहुत चिन्तन न कर, उसे भूल जायें और दुबारा गलती न करें। हमेशा स्मरण रखें, हमने तो भगवान की शरण ली है। वे सर्वशक्तिमान हैं, फिर हममें ये दुर्बल विचार कैसे आ सकते हैं? ऐसा विचार कर अपने मन में साहस और धैर्य रखें। ठाकुरजी कहते हैं, मन-मुख एक करो। सदा सत्य का आचरण करना चाहिये। कभी भी असत्य का आश्रय नहीं लेना चाहिए। जो बात दूसरे को कड़वी लगती है, वह नहीं बोलना अच्छा है। वास्तव में हम कठोर नहीं बोलते, हमारा अंहकार बोलता है। इसलिये हमें नम्र होना चाहिये। आध्यात्मिक जीवन में विनम्रता, मृदु स्वभाव, सबसे प्रेमभावना से व्यवहार अधिक सहयोगी होता है। हमें संसार के प्रति कर्तव्य-पालन आनन्द से करते हुए भगवान के नाम-जप में रुचि बढ़ानी चाहिए। भगवान में भक्ति बढ़े, इसके लिये निरन्तर प्रार्थना करते रहना चाहिये। भक्त के लिये प्रार्थना बहुत बड़ा सम्बल है। ○○○

योगसूत्र में 'संवेग'

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

चित्तवृत्ति निरोध के दो मुख्य उपायों, अभ्यास और वैराग्य का वर्णन करने के बाद पतंजलि अपने योगसूत्रों में संवेग का उल्लेख करते हुए कहते हैं – **तीव्र संवेगानामासन्नः**। अर्थात् तीव्र संवेग वाले योगियों को चित्तवृत्ति निरोध शीघ्र हो जाता है। पतंजलि इतना कहकर ही नहीं रुकते। वे जानते हैं कि सभी साधकों में ऐसा संवेग या तीव्रता नहीं हो सकती। अत: वे अगले सूत्र में कहते हैं – **मृदुमध्याधिमात्रात्वात् ततोऽपि विशेषः।** अर्थात् मृदुत्व, मध्यत्व और अधिमात्रत्व के कारण संवेगयुक्त व्यक्तियों में भेद होते हैं। ये भेद अभ्यास और वैराग्य इन दोनों में हो सकते हैं। जैसे, कोई साधक तीव्रता से अभ्यास करता है, पर उसमें वैराग्य मन्द या मृदु हो सकता है। दूसरे साधक में तीव्र वैराग्य हो, लेकिन अभ्यास की तीव्रता न हो। इस प्रकार इनके भिन्न-भिन्न अनुपात के अनुसार अनेक प्रकार के योगी हो सकते हैं। यह तो निश्चित ही है कि जिस योगी में अभ्यास और वैराग्य दोनों तीव्र होंगे, वह शीघ्रता से समाधि प्राप्त करेगा।

श्रीरामकृष्ण ने भी इस तीव्रता या संवेग पर बहुत अधिक जोर दिया है। इसे वे व्याकुलता कहा करते थे। श्रीम ने श्रीरामकृष्ण से पूछा था, "कैसी अवस्था हो, तो ईश्वर के दर्शन हों?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया था, "खूब व्याकुल होकर रोने से उनके दर्शन होते हैं। स्त्री या लड़के के लिये लोग आसुओं की धारा बहाते हैं, रुपये के लिए रोते हुए आँखें लाल कर लेते हैं, पर ईश्वर के लिये कोई कब रोता है।...

"बात यह है कि ईश्वर को प्रेम करना चाहिए। विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की, पति पर सती की जो प्रीति है, उतनी ही प्रीति से ईश्वर को बुलाने से उस प्रेम का महा-आकर्षण ईश्वर को खींच लाता है।

"व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। बिल्ली का बच्चा मिऊँ-मिऊँ करके माँ को पुकारता भर है। उसकी माँ जहाँ उसे रखती है, वहीं वह रहता है, माँ चाहे जहाँ रहे, मिऊँ-मिऊँ सुनकर आ जाती है।"[१]

श्रीरामकृष्ण व्याकुलता के और भी दृष्टान्त देते हैं – कृपण व्यक्ति जिस प्रकार सोने-चाँदी के लिए व्याकुल होता है, भगवान के लिए उसी प्रकार व्याकुल होवो।[२]

भगवान को पाने के लिए ऐसे व्याकुल होना चाहिए, जैसे डूबता हुआ आदमी साँस लेने के लिए होता है।[३]

सिर में घाव होने से कुत्ता जिस प्रकार बेचैन होकर दौड़ता फिरता है, भगवान के लिए भी उसी प्रकार की छटपटाहट चाहिए।"[४]

बच्चा जब तक चुसनी में भूला रहता है, तब तक माँ रसोई या घर के अन्य काम-काज में लगी रहती है। जब बच्चे को चुसनी अच्छी नहीं लगती और उसे फेंककर माँ के लिये चिल्लाकर रोने लगता है, तब माँ झट से चूल्हे पर से हांडी उतारकर दौड़ती हुई आकर बच्चे को गोदी में उठा लेती है।

"जिस प्रकार घर में कोई अस्वस्थ होने पर मन सदा चिन्तित रहता है और यदि किसी की नौकरी छूट जाती है, तो वह जिस प्रकार ऑफिस-ऑफिस में घूमता रहता है, व्याकुल होता रहता है, उसी प्रकार, यदि किसी आफिस में उसे जवाब मिलता है कि कोई काम नहीं है, फिर दूसरे दिन आकर पूछता है, 'क्या आज कोई जगह खाली हुई?[५]

"लड़का यदि खाना-पीना छोड़ दे, तो माँ-बाप उसके बालिग होने के तीन वर्ष पहले ही उसका हिस्सा उसे दे देते हैं।"[६]

फिर लड़का पैसा माँगता है और बार-बार कहता है, "माँ तेरे पैरों पड़ता हूँ, मुझे दो पैसे दे दो, तो माँ हैरान होकर उसकी व्याकुलता देख पैसा फेंक ही देती है।"[७]

योगसूत्र के संवेग विषयक इस सूत्र (१.२१) पर अपने विचार व्यक्त करते हुए व्याख्याकार हरिहरानन्द अरण्य दो और बहुत समीचीन उदाहरण देते हुए कहते हैं, "जैसे अश्व कशाघात द्वारा वेगवान होता है, उसी प्रकर तुम भी आतापी (वीर्यवान) और संवेगी होओ।[८] ... हिंस्र-पशु से भयभीत पथिक जैसी शीघ्रता करता है, संसार कानन से उद्धार पाने के लिये वैसी शीघ्रता ही योगियों का संवेग है।"

स्वामी विवेकानन्द ने और भी दृष्टान्त दिया है – एक महात्मा प्राय: कहा करते थे, "मान लो इस कमरे में चोर घुसा हो और उसे पता चल जाय कि पास वाले कमरे में बहुत-सा सोना रखा हुआ है और दोनों कमरों के बीच की दिवाल भी बहुत कमजोर है। ऐसी अवस्था में उस चोर की क्या दशा होगी? उसे न तो नींद आएगी, न उसे खाने या अन्य कोई काम करने में रुचि रह जाएगी।"

इन सभी दृष्टान्तों के साथ शंकराचार्य का विवेकचूडामणि में दिया गया दृष्टान्त भी देखें – यदि किसी व्यक्ति के सिर पर आग रख दी हो, तब वह जिस द्रुत गति से पानी की ओर दौड़ेगा, उसी प्रकार की तीव्रता और गति के साथ हमें गुरु के पास मुक्ति के लिये मार्गदर्शन के लिये जाना चाहिए।

अब तक संवेग, तीव्रता, व्याकुलता के बहुत से सुन्दर दृष्टान्त हमें मिल गये हैं। यथा, साँस के लिए व्याकुल डूबता हुआ व्यक्ति, सिर पर घाववाला कुत्ता, सिर पर अंगारेवाला साधक, घर में किसी के बीमार होने पर व्याकुल व्यक्ति, नौकरी छूट जानेवाला व्यक्ति, अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिए व्यग्र युवक, चुसनी और खिलौने फेंक कर माँ के लिए रोनेवाला बालक, कशाघात पानेवाला घोड़ा, जंगल से गुजर रहा भयभीत यात्री और सोने के पासवाले कमरे में स्थित एक चोर।

इन उदाहरणों का विश्लेषण करने पर हम पायेंगे कि वे तीन प्रकार की परिस्थितियों का संकेत करते हैं, जो व्याकुलता या तीव्रता पैदा कर सकती हैं – १. पीड़ा, कष्ट से पीड़ित व्यक्ति जो उसे दूर करने के लिये व्यग्र है। २. पीड़ा न भी हो पर अधिक प्रिय सुखदायक वस्तु को प्राप्त करने के लिये होनेवाली व्यग्रता। ३. भावी भय या कष्ट से बचने की व्यग्रता। अधिकांश दृष्टान्त पहले प्रकार के हैं। माँ के लिए रोने वाला बच्चा, या सोना चाहने वाला चोर या माँ से पैसा माँगने वाला बच्चा, ये दृष्टान्त दूसरी श्रेणी के हैं और जंगल में भयभीत व्यक्ति का दृष्टान्त तीसरी श्रेणी का है।

इन दृष्टान्त के अनुरूप परिस्थितियों से संसार में सभी परिचित हैं। पर यहाँ उनका महत्त्व या औचित्य इसी में है कि वे हममें भगवान को प्राप्त करने की या योग द्वारा मुक्तिलाभ के लिए व्याकुलता जगाएँ, हमें व्यग्र करें। लेकिन सामान्यतया ऐसा होता नहीं है। हममें से अधिकांश सांसारिक खिलौनों से संतुष्ट रहते हैं । तथा उन्हें त्यागने के बदले एक-एक करते बढ़ाते जाते हैं। हम उनसे ऊबते नहीं, और न ही उन्हें फेंककर भगवान को पुकारते हैं। ऐसी आध्यात्मिक लापरवाही और संवेदनहीनता के परिणाम के बारे में सचेत करते हुए केनोपनिषद में कहा गया है –

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।[९]

अर्थात् यहीं, इस जन्म में, यदि अपने वास्तविक स्वरूप को जान लिया है, तो जीवन सत्य या सार्थक है, अन्यथा बहुत विनाश है।

सभी जीवन में छोटे-बड़े चाबुक खाते रहते हैं। आफिस में, परिवार में, सांसारिक परिस्थितियों में छोटी-बड़ी असुविधायें होती रहती हैं। हम उनको सहन कर लेते हैं, उनके साथ समझौता करके जी लेते हैं। लेकिन ये छोटे-मोटे आघात हमें भगवान की ओर नहीं मोड़ते। प्रतिदिन जीवन घटता जा रहा है। कितने लोगों के बाल पक गये हैं, मृत्यु दिन-पर-दिन निकट आ रही है। यह मानो जीवन रूपी अरण्य में संध्या के आगमन जैसा है। पर हम इस भयानक अरण्य से निकलने के लिए अपनी गति नहीं बढ़ाते। भगवदीय सुवर्ण राशि हमारे हृदय में ही पड़ी हुई है, पर काश ! चोर की तरह उसे पाने के लिए हम छटपटाते नहीं। सम्भवत: इसके बारे में किसी ने हमें कहा नहीं। भले ही श्रीरामकृष्ण ने हमें कहा है कि माँ जगदम्बा हमारे पास हैं, तीन दिन उनके लिये रोने पर उनके दर्शन हो सकते हैं, पर हम उनके वचनों में विश्वास कर रोते नहीं।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – "ज्योंहि मनुष्य विश्वास करने लगता है कि परमेश्वर विद्यमान हैं, वह उसे पाने के लिये पागल हो जाता है। लोग अपनी राह भले ही जायँ, लेकिन मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है कि जैसा जीवन वह आज तक व्यतीत कर रहा है, उससे कहीं ऊँचा जीवन व्यतीत कर सकता है, और ज्योंहि उसे निश्चित रूप से यह अनुभव होने लगता है कि इन्द्रियाँ ही सर्वस्व नहीं हैं, यह मर्यादित जड़ शरीर उस शाश्वत, चिरन्तन और अमर आत्मानन्द के सामने कुछ नहीं है, तो वह उन्मत्त हो जाता है और उस परमानन्द को स्वयं ढूँढ़ निकालता है। यह वह पागलपन है, वह प्यास है, वह उन्माद है, जिसका नाम है धर्मभाव की जागृति ..."[१०]

एक सच्चा योगी, एक प्रबुद्ध व्यक्ति, जीवन के क्षणिक नित्यसुखों से कभी प्रलोभित नहीं होता। उसका मन आँख की पुतली के समान अत्यन्त संवेदनशील होता है। बुद्ध के समान सुख-दुख की समस्या का अन्तिम समाधान न खोज पाने तक उसे चैन नहीं मिलता। बुद्ध की तो अद्भुत विशेषता यह थी कि उन्होंने स्वयं अपने जीवन में रोग, वृद्धास्था और मृत्यु का अनुभव नहीं किया। उनका अत्यन्त संवेदनशील मन इन दृश्यों के दर्शन मात्र से जाग्रत हो उठा और दुख की समस्या का समाधान पाने तक रुका नहीं। पतंजलि ने कहा है कि एक सच्चे योगी के लिये तो सभी परिस्थितियाँ चाहे वे सुखदायक हों या दुखदायक उसे वे दुख ही दिखाई देती हैं।[११]

इस तीव्रता या संवेग की श्रेणियाँ हो सकती हैं। श्रीरामकृष्ण भी कहते थे कि अगर कोई भगवान के लिये तीन दिन रोये, तो उनके दर्शन कर सकता है। तीन दिन नहीं तो तीन माह या तीन वर्ष ही सही। लेकिन हमें इतने ढीले, संवेगविहीन, नहीं हो जाना चाहिए कि तीन जन्मों में भी भगवान का दर्शन न कर सकें।

साधक को यथासम्भव किसी भी उपाय से अपनी तीव्रता, व्याकुलता, संवेग, बढ़ाते जाना चाहिए। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – **१.** श्रीरामकृष्णवचनामृत **२.** अमृत वाणी, पृ. १४५ **३.** वही **४.** वही पृ.१४६ **५.** वचानामृत पृ. २६७ **६.** वही **७.** वही **८.** (धम्मपद १०.१५) **९.** ५.१३ **१०.** विवेकानन्द सहित्य, खण्ड-३, पृ. २५०-२५१) **११.** योगसूत्र ११, १५

समाचार और सूचनाएँ

भगिनी निवेदिता की १५०वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के कई केन्द्रों द्वारा विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये –

आँटपुर द्वारा आयोजित ५ मई के भक्त सम्मेलन में २५० भक्तों ने भाग लिया।

दिल्ली में ऑनलाइन प्रतियोगिता हुई, जिसमें २५० कॉलेज के छात्रों ने भाग लिया। विजेताओं को २३ अप्रैल को पुरस्कार प्रदान किया गया।

नरौरा (प.बं) में २८ अप्रैल को महिला सशक्तिकरण पर कार्यक्रम आयोजित हुआ, जिसमें ७०० लोग उपस्थित थे।

सरिषा (प.बं) में ६ और ९ अप्रैल को व्याख्यान हुए, जिसमें २७०० लोगों ने भाग लिया।

पोन्नमपेट (कर्नाटक) में सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें २०० लोग उपस्थित थे।

सिल्चर में २४ और २५ मई को छात्र और शिक्षक सम्मेलन हुआ, जिसमें २१० छात्र और ५८ शिक्षक उपस्थित थे।

स्वामी विवेकानन्द पैतृक भवन में २४ अप्रैल से २० मई के बीच चार व्याख्यान और नाटक आयोजित हुए, जिसमें २०६५ लोगों ने रसास्वादन किया। इस दौरान कोलकाता के आसपास के क्षेत्रों में ५ प्रवचन हुए, जिसमें १५०० भक्त उपस्थित थे।

भारत के अतिरिक्त विदेशों में अमेरिका के **शिकागो और सेन्ट लुईस** ने संयुक्त रूप से वाशिंग्टन विश्वविद्यालय में कार्यक्रम आयोजित किये।

छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्रीजी ने छात्रों को पुरस्कृत किया

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में ५ से ९ अप्रैल तक क्रीड़ा-प्रतियोगिता आयोजित हुई, जिसमें ३ जिलों के, ३० स्कूलों के १५०० छात्रों ने भाग लिया।

सेन्ट्रल रिजर्व पुलिस फोर्स ने राज्यस्तरीय फुटबाल मैच प्रतियोगिता आयोजित की जिसमें नारायणपुर आश्रम के छात्रों की 'विवेकानन्द फुटबाल एकेडमी' सर्वश्रेष्ठ टीम घोषित हुई। २१ मई को **छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री डॉ. रमन सिंह जी** ने अपने कर कमलों से छात्रों को पुरस्कृत किया। पुरस्कार में ५० हजार रुपये और कप प्रदान किया। सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी सुरेश कुमार को २५०० रुपये और कप प्रदान किया। कार्यक्रम में नारायणपुर विद्यालय के प्राचार्य स्वामी कृष्णामृतानन्द जी और स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने खेल और कार्यक्रम में उपस्थित रहकर बच्चों का उत्साहवर्धन किया।

करीमगंज में **असम** के **मुख्यमन्त्री** श्री सर्वानन्द सोनोवाल जी ने ३ मई को आश्रम का परिदर्शन किया। १० मई को आश्रम के १ वर्ष चलनेवाले शताब्दी महोत्सव का उद्‌घाटन सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज के द्वारा किया गया, जिसमें कई साधु और लगभग ५०० भक्त उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने १ से १८ मई के अन्तर्गत पाँच राज्यों में आदर्श शिक्षा पर ९ सेमीनार आयोजित किए, जिसमें ४४५ प्राचार्य और शिक्षकों ने भाग लिया।

जलपाईगुड़ी (प.बं) के आदर्श शिक्षा सेमीनार में १७० छात्रों ने भाग लिया।

राहत कार्य

बांग्लादेश के ढाका में बाढ़ और अग्नि राहत-कार्य, **असम** में चक्रवात राहतकार्य, **भारत के अरुणाचल प्रदेश** में अग्निराहत कार्य, **कर्नाटक** में सूखा-राहतकार्य, **हैदराबाद में** ग्रीष्म-राहत कार्य, **पश्चिम बंगाल** के ५ केन्द्रों और **शिमला** द्वारा आपदा राहत-कार्य किया गया।

रामकृष्ण आश्रम, धनबाद में मई में साहित्य विक्रय केन्द्र का उद्‌घाटन रामकृष्ण मिशन, मोराबादी राँची के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी ने किया। OOO